thearyasamaj.org

जिसने बदली दिशा जगत् की,
धरती और आकाश की ।
जय बोलो ऋषि दयानन्द की,
जय सत्यार्थ प्रकाश की ।।

।। ओ३म् ।।

वर्ष - ५६ अंक - १२
मूल्य : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १००) रु०
आजीवन - १०००) रु०
प्रतिमास ता० १३ को प्रकाशित

आर्य-संसार

मार्गशीर्ष-पौष : सम्वत् २०७१ वि० दिसम्बर, २०१४

आचार्य प्रो० उमाकान्त उपाध्याय

जन्म - कार्तिक शुक्ल १४ सम्वत् १९८४ वि० तदनुसार १२ नवम्बर १९२७ ई०

मृत्यु - कार्तिक शुक्ल १० सम्वत् २०७१ वि० तदनुसार २ नवम्बर २०१४ ई०

thearyasamaj.org

आचार्य पंडित उमाकान्त उपाध्याय

उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जिले में झौवारा नामक ग्राम में कार्तिक शुक्ल १४ सम्वत् १९८४ वि०, तदानुसार १२ नवम्बर १९२७ ई० को पंडित उमाकान्त उपाध्याय का जन्म उपाध्याय परिवार में हुआ था। पिताजी का नाम पंडित नागेश्वर उपाध्याय और माता जी का नाम श्रीमती दिलराजी था। पिताजी निष्ठावान पौराणिक पुरोहित ब्राह्मण थे। वे पुरोहित वृत्ति के थे और दुर्गा जी के बड़े भक्त थे। दोनों नवरात्रों में नौ दिनों का दुर्गा का व्रत करते थे। आस-पास के गांव में यह प्रसिद्ध था कि दुर्गाजी उन्हें इष्ट थीं। ताऊजी, पंडित सीताराम जी उपाध्याय 'काव्यतीर्थ' संस्कृत साहित्य के उच्च कोटि के विद्वान् थे। इनकी प्रसिद्धि उच्च कोटि के कथावाचक और आशुकवि के रूप में थी। कनिष्ठ चाचाजी पंडित अच्युतानन्द जी व्याकरणाचार्य थे और आचार्य तक नवीन व्याकरण पढ़ाते थे, बड़े प्रसिद्ध शास्त्रार्थी थे। इस प्रकार पंडित उमाकान्त उपाध्याय के परिवार में कट्टर पौराणिक निष्ठा थी।

ऐसे पौराणिक निष्ठा के परिवार में जन्म लेने के पश्चात् भी उमाकान्त जी शैशव से ही आर्य समाज की दीक्षा में बड़े हुए। इनके अग्रज आचार्य पंडित रमाकान्त जी शास्त्री आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान्, उपदेशक और संस्कृत के महान् कवि थे। आचार्य रमाकान्त जी ने 'दयानन्द चरितम्' बीस सर्गों का महाकाव्य संस्कृत में लिखा है। आचार्य रमाकान्त जी, स्वामी दयानन्द और आर्य समाज के परम निष्ठावान भक्त प्रचारक थे। इसलिए परिवार में पौराणिक निष्ठा होने के पश्चात् भी उमाकान्त जी का पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा आर्य समाज के सिद्धान्तों के परिवेश में आरम्भ से ही होती रही। आचार्य रमाकान्त जी ने अपने अनुज उमाकान्त को 'सत्यार्थ प्रकाश' की पुस्तक उसी समय दे दी थी जब उमाकान्त जी प्राइमरी कक्षा के विद्यार्थी थे। उमाकान्त जी ने उसी बालकपन में सत्यार्थ प्रकाश को बड़ी श्रद्धा भक्ति से पढ़ा था। परिणाम यह हुआ कि मिडिल की शिक्षा पूरी होते-होते इनमें आर्य समाज की कट्टरता पूर्ण रूप से आ गयी थी। यह समय महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन और १९४२ की प्रसिद्ध क्रांति 'अंग्रेजों भारत छोड़ो', 'करो या मरो' का समय था। इस प्रकार उमाकान्त जी के शैशव में ही एक ओर धार्मिक क्रांति और दूसरी ओर स्वदेश भक्ति की क्रांति का पूर्ण रूप से प्रभाव पड़ा। बड़े भाईजी के आदेश के अनुसार सरकारी छात्रवृत्ति को ठुकरा कर भी संस्कृत का अध्ययन आरम्भ किया। बड़े भाई जी ने अपने छोटे भाई को अष्टाध्यायी पढ़ने के लिए सुल्तानपुर की प्रसिद्ध संस्कृत पाठशाला 'कमलाकर' में प्रविष्ट करा दिया। उस पाठशाला में अध्यापन तो आचार्य श्रेणी तक होता था। किन्तु अष्टाध्यायी के माध्यम से व्याकरण पढ़ाने वाला कोई विद्वान् वहां न था। फलतः अष्टाध्यायी कण्ठ कर लेने के पश्चात् विवश होकर इन्होंने कौमुदी के माध्यम से व्याकरण की पढ़ाई प्रारम्भ की। इस परिस्थिति में आचार्य रमाकान्त जी अपने अनुज को कोलकाता ले आये और यहां चार-पांच वर्षों तक संस्कृत के सुबुद्ध विद्वान् पंडित रामनरेश जी शास्त्री के पास सिद्धान्त कौमुदी, काशिका, वेदांग प्रकाश आदि ग्रंथों का अध्ययन कराते रहे। साथ में ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, न्याय और वैशेषिक दर्शनों की शिक्षा आचार्य रमाकान्त जी स्वयं देते रहे। इसके पश्चात् अंग्रेजी की शिक्षा आरम्भ हुई। बी०ए० (अर्थशास्त्र) में ऑनर्स और अर्थशास्त्र में ही एम०ए० की परीक्षाएं कोलकाता विश्वविद्यालय से पास करके उमाकान्त जी ने सन् १९५९ ई० में कोलकाता के सुप्रसिद्ध महाविद्यालय जयपुरिया कालेज में अर्थशास्त्र का अध्यापन प्रारम्भ किया। जयपुरिया कालेज में ऑनर्स कक्षा तक की पढ़ाई होती

(शेषांश पृष्ठ २३ पर)

thearyasamaj.org

ओ३म्

आर्य-संसार

वर्ष ५६ अंक — १२

मार्गशीर्ष-पौष २०७१ वि०
दयानन्दाब्द १९०
सृष्टि सं० १,९६,०८,५३,११५

दिसम्बर— २०१४

मूल्य : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १०० रुपये
आजीवन : १००० रुपये

सम्पादक :
श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल

सहयोगी संपादक :
श्रीमती सरोजिनी शुक्ला
श्री सत्य प्रकाश जायसवाल
पं० योगेश राज उपाध्याय

इस अंक की प्रस्तुति

१.	आचार्य पंडित उमाकान्त उपाध्याय	-	२
२.	इस अंक की प्रस्तुति	-	३
३.	राष्ट्र का विजय घोष	- वेद-वीथिका	४
४.	महर्षि वचन सुधा-३८	- प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	७
५.	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय का महाप्रयाण : एक महती क्षति	- डॉ० भवानीलाल भारतीय	९
६.	'राष्ट्र-सम्वर्धन'	- श्री देवनारायण भारद्वाज	१०
७.	"तप नहीं, तो सुख नहीं"	- प्रो० ओमकुमार आर्य	११
८.	"आह ! पं० उमाकान्त जी उपाध्याय चल बसे"	- श्री राजेन्द्र जिज्ञासु	१४
९.	श्रद्धा तथा अनुशासन	- डॉ० रविदत्त शर्मा	१६
१०.	"वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द"	- श्री खुशहाल चन्द्र आर्य	१७
११.	स्वामी दयानन्द सरस्वती के जन्म दिवस आदि तिथियों का गणनात्मक विवेचन	- महात्मा ओम् मुनि	२०
१२.	आर्य समाज कलकत्ता का १२९वाँ वार्षिकोत्सव		२८

आर्य समाज कलकत्ता
१९, विधान सरणी, कोलकाता-७०० ००६, दूरभाष : २२४१-३४३९
email : aryasamajkolkata@gmail.com

'आर्य संसार' में प्रकाशित लेखों का उत्तरदायित्व सम्बन्धित लेखकों पर है।
किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र कोलकाता ही होगा।

thearyasamaj.org

२४

राष्ट्र का विजय घोष

अहमस्मि सहमान उत्तरोनाम भूम्याम् ।

अभीषाढस्मि विश्वाषाडाशामाशां विषासहिः ।।

अथर्व० १२-१-५४

शब्दार्थ :-

अहम्	=	मैं, (हम), जनता
अस्मि	=	हूं
सहमानः	=	सहनेवाला, मोर्चा लेनेवाला
उत्तर	=	उच्चतर, बढ़कर
नाम	=	नामवाला, प्रसिद्ध
भूम्याम्	=	धरती पर, संसार में
अभीषाट्	=	सर्वजेता
अस्मि	=	हूं
विश्वाषाट्	=	विश्वविजेता
आशामाशाम्	=	प्रत्येक दिशा में, सर्वत्र
विषासहिः	=	विजेता

भावार्थ :- मैं विरोधियों को सह लेनेवाला, उनसे मोर्चा ले लेनेवाला हूं । संसार में मेरा नाम उच्च से उच्चतर है । मैं सारे विरोधियों को जीतने वाला विश्वविजयी हूं । मैं प्रत्येक दिशा का विजेता हूँ ।

विचार विन्दु :

१.राष्ट्रीय स्वाभिमान और आत्मविश्वास की आवश्यकता

२.विजय के स्वरूप-(अ) अस्त्र-शस्त्रों की जीत (आ) सुशासन-सुव्यवस्था की जीत (इ) जीवन आचरण चरित्र की जीत ।

३.विरोधी तो ईर्ष्या द्वेष के कारण भी होते हैं ।

४.विश्वविजय का भारतीय रूप ।

५.प्रत्येक दिशा-धन सम्पत्ति, चरित्र, सुव्यवस्था, ऋताचार, अस्त्र-शस्त्र, सबकी आवश्यकता।

thearyasamaj.org

व्याख्या

राष्ट्र का सैनिक बल बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है । युद्ध के समय सैन्य शक्ति का ही सम्मान होता है। धन धान्य से पूर्ण राष्ट्र भी सैन्यशक्ति निर्बल होने पर पराधीन हो जाते हैं ।

इस मन्त्र में राष्ट्र का सैनिक अथवा राष्ट्र का नागरिक या राष्ट्र का प्रतिनिधि अपने विजय की घोषणा करता है । सैनिक या नागरिक अथवा प्रतिनिधि कहता है कि मेरा विरोधी कितना भी प्रचण्ड बलवान् हो, मैं उसे सह लूँगा, उससे मोर्चा लेने में सफल होऊँगा, क्योंकि सारे संसार में मेरा सामर्थ्य, मेरी प्रसिद्धि ऊँचे से ऊँची उच्चतर हैं । मैं प्रत्येक दिशा में सर्वविजेता शत्रुओं को जीत लेने वाला विश्वविजेता हूँ ।

मन्त्र को ऊपर से देखने पर ऐसा लगता है कि जैसे कोई अहंकारी अहंकार में यों ही हांक रहा हो । उत्तर बड़ा सीधा और सरल है कि विजयघोष करना शत्रुओं से मोर्चा लेने वालों का अधिकार है, आवश्यक कर्त्तव्य है, स्वाभिमान और अपने संकल्प का प्रकट करना है । कभी अपने को न तो निर्बल बोलना चाहिये और न अपनी आत्मा का अपमान करना चाहिये । भगवान श्रीकृष्ण गीता में अर्जुन को उपदेश देते हैं :—

''उद्धरेदात्मना आत्ममानम्, नात्मानम् अवसादयेत् ।'' सदा अपने आत्म संकल्प से, आत्म क्विश्वास से अपनी आत्मा का बल बढ़ाता रहे, कभी आत्मा की निन्दा न करें । ऋषियों ने शिक्षा दी है—

यद् वाचा वदति, तद् कर्मणा करोति
यत् कर्मणा करोति, तदभिसम्पद्यते ।

''यन्मनसा मनुते तद्वाचावदति'' जो मन में आता है वही वाणी से निकलता है, जो वाणी से निकलता है वैसा ही कर्म होने लगता है और फिर कर्म के अनुसार ही मनुष्य को फल मिल जाता है। अतः विजय घोष के साथ आत्म सम्मान को बढ़ाना चाहिये । युद्धों के समय तो विजयघोष भी होता है और वीर राग के गीत होते हैं, वीर-स्वर के बाजे भी बजते हैं । अतः विजय घोष आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास का प्रतीक है ।

वीर-पुरुष अपने शत्रुओं से बढ़-चढ़ कर मोर्चा लेता है और प्रमाणित कर देता है कि मैं सब में बढ़कर हूँ । महाभारत के युद्ध में कर्ण और अर्जुन का निर्णायक विश्व विश्रुत युद्ध होने वाला था। अर्जुन के सेनापति श्रीकृष्ण और कर्ण के सेनापति शल्य थे । जब दोनों रथ आमने-सामने हुए तो कर्ण ने अर्जुन को बड़े क्रोध में घूरा और अर्जुन ने उसी तरह क्रोध से कर्ण को भी घूरा । यही बात दोनों सारथियों शल्य और कृष्ण में भी हुई । शल्य ने कृष्ण को और कृष्ण ने शल्य को घूरना आरम्भ किया । यह घूरना क्या था, क्रोध से जलती हुई आंखों का अग्नि-वर्षण था । शल्य श्रीकृष्ण के तेज को न सह सका और उसकी आंखें झपक गईं । इसी तरह अर्जुन की आंखों से बरसते हुए, क्रोधाग्नि के गोलों को कर्ण भी न सह पाया और उसकी भी आंखें झुक गईं। बस मानसिक युद्ध में न शल्य कृष्ण को सह सका और न कर्ण अर्जुन को सह सका और कर्णार्जुन युद्ध का फैसला इन दोनों आंखों के अग्नि-वर्षण में हो गया । कर्ण मन से पराजित हो गया। इसीलिए कहा है कि मैं शत्रु को सह लेता हूं।

योद्धा कहता है कि मैं तो उत्तरोनामा–उच्चनामवाला, ऊंचे से ऊंचा वीर हूं । अंग्रेजी में इसे

thearyasamaj.org

Record breaker कहेंगे । युद्ध और विजय के कई रूप होते हैं । अस्त्र-शस्त्रों से भी बड़ा युद्ध चरित्रबल का होता हैं । श्रीराम के चरित्र की महिमा लंका वाले भी गाते थे और रावण के चरित्र की निन्दा तो सभी करते थे । जिसका चरित्र-बल, शील-शालीनता का बल ऊंचा होता है उसकी विजय निश्चित है । हथियारों की लड़ाई से जीता हुआ युद्ध और उस युद्ध का विजय कुछ वर्षों के लिए होता है किन्तु चरित्र, शील, शालीनता और धर्म का विजय चिरस्थायी होता है । विरोधियों के हृदय पर होता है और विरोधी भी मित्र हो जाते हैं । श्री जयशंकर प्रसाद जी ने बड़ी प्यारी पंक्ति लिखी है :-

'विजय केवल लोहे की नहीं, धरा पर रही धर्म की धूम ।' और यह धर्म की विजय हृदय पर जीत, विजय को अंकित कर जाती है, और इस धर्म-ध्वजा का, शील-शालीनता की ध्वजा का सारे संसार में हजारों वर्षो तक सम्मान बना रहता है । इसमें सैनिक मारे नहीं जाते, न तलवारें चलती हैं, न बच्चे अनाथ होते हैं । इस धर्म विजय के रथ के साथ दोनों ओर आदर, सम्मान और प्रेम पलता हैं । भगवान बुद्ध चीन, जापान, कोरिया आदि देशों में सेना सजा कर नहीं गये थे । यह उनकी धर्म की विजय थी - धरा पर चरित्र और धर्म की विजय थी ।

'अरुण केतन लेकर निज हाथ,
वरुण पथ में हम बढ़े अभीत ।'

यह ध्यान रखना चाहिए कि सब जगह धर्म, चरित्र और शील ही काम नहीं आते । जब दुर्योधन को समझाने श्रीकृष्ण गये और दुर्योधन ने टका-सा उत्तर दे दिया - कि बिना युद्ध के सुई की नोंक के बराबर भी भूमि नहीं दूंगा तो कृष्ण ने वहीं कहा था—दुर्योधन तुम्हारी कामना पूरी होगी और अब युद्ध ही होगा, महा-रण होगा । अन्याय को दबाने के लिए न्यायशीलों को विजेता बनना ही पड़ता है । राष्ट्र के लिए क्षात्र शक्ति, सैन्य बल अत्यन्त आवश्यक है ।

'क्षमा सोहती उस भुजंग को, जिसके पास गरल हो ।'

धर्म, चरित्र, शील, यह सब ब्राह्म शक्तियां हैं किन्तु इन्हें सैनिकों, सेनापतियों और शान्ति-सुव्यवस्था के उत्तरदायी पुलिस कर्मचारियों में भी होना चाहिए ।

ब्राह्म शक्ति का एक और काम है जिसकी आवश्यकता क्षत्रिय शक्ति को पड़ती है । युद्ध में प्रयुक्त होने वाले उपकरण हथियार, वायुयान, मिसाइलें इत्यादि की तकनीक को समुन्नत करके क्षत्रियों को सेना को सैंप देना ब्राह्मण का कार्य है । श्रीराम को ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने बला, अतिबला सिद्धियां प्रदान कीं और साथ ही दर्जनों अद्वितीय कोटि के मारक क्षमता वाले वाण भी प्रदान किये । जो आज की भाषा में मिसाइल्स (Missiles) या और प्रक्षेपास्त्र थे । इसी प्रकार राक्षसों का संहार करने के लिए पंचवटी में महर्षि अगस्त्य ने श्रीराम को अनेकों प्रक्षेपास्त्र प्रदान किये थे । श्रीराम जब चित्रकूट से चलकर पंचवटी के पास अगस्त्य आश्रम में पहुंचे और महर्षि को प्रणामपूर्वक अपना समाचार सुनाने लगे तो महर्षि ने कहा था कि राम ! हमें सब पता है । तुम गोदावरी में आचमन करके आओ और हमने तुम्हारे लिए कुछ रख छोड़ा है उसे ग्रहण कर लो । राक्षसों के साथ युद्ध में यह सब काम आयेगा ।

हमारा आशय केवल इतना है कि क्षत्रिय अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग करते हैं और ब्राह्मण उनकी तकनीक का आविष्कार करके उत्पादन का विजय का मार्ग प्रशस्त करते हैं । अतः शत्रुओं पर विजय पाने के लिए ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों शक्तियों का समन्वय और सामञ्जस्य आवश्यक है ।

साभार : वेद-वीथिका

thearyasamaj.org

"'महर्षि वचन सुधा'' (३८)

– प्रो० उमाकान्त उपाध्याय

''संन्यासी की भूमिका''

''देखो ! तुम्हारे सामने पाखण्ड-मत बढ़ते जाते हैं। ईसाई मुसलमान तक हो रहे हैं। तुमसे अपने घर की रक्षा और दूसरों को मिलाना नहीं बन सकता। बने तो तब, जब तुम करना भी चाहो। जब तक वर्त्तमान और भविष्यत् में संन्यासी उन्नतिशील नहीं होते, तब तक आर्यावर्त्त और अन्य-देशस्थ मनुष्यों की वृद्धि नहीं होती। जब वृद्धि के कारण वेदादि शास्त्रों का पठनपाठन, ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के यथावत् अनुष्ठान, सत्योपदेश होते हैं, तभी देशोन्नति होती है।''

—सत्यार्थ० एकादश समु०

व्याख्या–स्वामी दयानन्द जी ने मनुष्यों को धर्माधिकार में स्वतंत्रता का समर्थन किया है। जिस समय स्वामी दयानन्द प्रचार क्षेत्र में काम करने लगे तो उन्होंने देखा कि मुसलमान और ईसाई दोनों ही हिन्दुओं को अपने-अपने सम्प्रदाय में मिला रहे हैं। खूब चालाकी से हिन्दुओं को मुसलमान और ईसाई बनाया जा रहा था। सुनते हैं कि आज जहाँ ''मेव'' मुसलमान हैं, वहाँ किसी गाँव में रात को कोई मुसलमान गांव के कुएँ में थूक गया, सही या झूठ, किसी ने सवेरे हल्ला मचा दिया कि आप सब लोगों ने मुसलमान का जूठा पानी पी लिया। कोई यह भी नहीं पूछता था कि थूक पानी में मिला या नहीं। अब सब सारा गाँव मुसलमान हो गया। थूक पानी तक पहुंचा भी था या नहीं। उस समय उस क्षेत्र में प्रायः एक ही कुंआ होता था। सारा गाँव वहीं से पानी पीता था। सारा का सारा गाँव जूठा पानी पीने के बहाने मुसलमान मान लिया जाता था। दूसरे बिरादरी के लोग उन्हें मुसलमान मान लेते थे और उनके साथ 'रोटी-बेटी' का सम्बन्ध, खाने-पीने और विवाह आदि का सम्बन्ध नहीं करते थे। इस तरह छल प्रपंच से मुसलमान बन रहे थे।

ईसाईयों का तो राज ही था। अनेक तरह के लोभ लालच देकर हिन्दुओं को ईसाई भी बनाया जाता था। हिन्दुओं के देवी-देवताओं को खुले आम गालियाँ देते थे और हिन्दुओं को इस मत परिवर्तन की कोई चिन्ता नहीं होती थी। बड़े-बड़े पाधा पण्डित पुजारी लोग यह और कहते थे कि गंगा का एक लोटा जल निकल जाने से गंगा में पानी कम नहीं होता। लोग कितने भी ईसाई मुसलमान बनावें, हिन्दुओं को कोई हानि नहीं होती है। धीरे-धीरे इतने मुसलमान बन गये कि सन् १९४७ आते-आते देश का विभाजन हो गया और हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दो देश बन गये।

प्रस्तुत उद्धरण में स्वामी जी उलहने के रूप में भारतवर्ष के लोगों से कहना चाह रहे हैं कि अपने देश के बहुत सारे लोग मुसलमान और ईसाई होते जा रहे हैं और अपने देश के पढ़े-लिखे समझदार लोगों को भी इस बात की कोई चिन्ता नहीं हो रही है कि हिन्दुओं की संख्या प्रतिदिन घट रही है। अन्य मत के लोगों को हिन्दुओं में सम्मिलित करना अच्छा होता, किन्तु यहाँ तो हिन्दू को ही इस जाति विरोधी कार्य की चिन्ता नहीं हो रही है। सभी सन्तुष्ट, निश्चिन्त, इस समस्या की ओर से उदासीन जैसे बने रहते हैं।

धर्म-प्रचार का कार्य विद्वानों, गृहत्यागी, वानप्रस्थियों और संन्यासियों द्वारा अच्छी तरह किया जा

thearyasamaj.org

सकता है । इसमें भी पण्डित लोग गृहस्थी होते हैं, उन्हें अपने घर के कार्य, बाल-बच्चों का पालन-पोषण और अन्य सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना पड़ता है । अतः जातीय उन्नति का काम वानप्रस्थियों और संन्यासियों के द्वारा अच्छी तरह होगा । इनमें भी सर्वत्यागी संन्यासियों द्वारा इस जातीय उत्तरदायित्व का निर्वहन अच्छी तरह हो सकता है । इसीलिए स्वामी जी कहते हैं कि यह कार्य संन्यासियों द्वारा अच्छी तरह होगा ।

स्वामी जी कहते हैं कि भारतवर्ष हो या दूसरे देश हों, जब तक वेद के सिद्धान्तों का प्रचार नही होगा और लोग उन पर आचरण नहीं करेंगे, तब तक संसार की उन्नति नहीं हो सकती । इस उन्नति में सबसे बड़ा सहयोग विद्वान संन्यासियों द्वारा ही हो सकता है । कई बार वैराग्य के कारण भी कई लोग संन्यासी बन जाते हैं । वे उन्नतिशील संन्यासी नहीं हो पाते । संसार का कल्याण तो उन्नतिशील, विद्वान्, संन्यासियों द्वारा ही होगा ।

संन्यासी ब्रह्मचर्य आश्रम और वेद की शिक्षाओं का प्रचार करेंगे । इसी से देश-जाति की उन्नति होगी । जिन नियमों के पालन से भारतवर्ष की उन्नति होगी, उन्हीं नियमों के पालन से संसार के सभी देशों की उन्नति सम्भव है । अतः संसार के सभी देशों की उन्नति के लिए विद्वान् संन्यासियों की सर्वत्र आवश्यकता है । सर्वत्यागी संन्यासी को संसार का उपकार करने में उदासीन नहीं होना चाहिए । आत्मोन्नति और संसार का कल्याण करना, दोनों संन्यासियों के लिए आवश्यक कर्तव्य हैं ।

सम्पर्क : ईशावास्यम्
पी-३०, कालिन्दी हाऊसिंग स्टेट
कोलकाता-७०००८९
फोन - ०३३-२५२२२६३६
मो० - ९४३२३०१६०२

प्रो० उमाकान्त उपाध्याय स्मृति विशेषांक

स्व० प्रो० उमाकान्त उपाध्याय जी आर्यसमाज के एक जागरूक स्तम्भ थे । विद्वत्समाज में उन्हें बहुत सम्मान प्राप्त था । मृत्यु पर्यन्त अहर्निश आर्यसमाज की सेवा करते रहे । वे 'आर्य संसार' मासिक पत्र के आजीवन अवैतनिक संस्थापक सम्पादक रहें । आर्यसमाज कलकत्ता ने उनकी स्मृति में एक स्मृति विशेषांक प्रकाशित करने का निर्णय लिया है । यह स्मृति विशेषांक फरवरी २०१४ अंक के रूप में प्रकाशित होगा । विद्वानों, सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा संस्थाओं के अधिकारियों से अनुरोध है कि आचार्य जी से सम्बन्धित लेख आदि आर्य समाज कलकत्ता, १९ विधान सरणी के पते पर भेजें । लेख हमें १५ जनवरी २०१४ तक प्राप्त हो जाने चाहिए ।

राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
(सम्पादक)

thearyasamaj.org

प्रो० उमाकान्त उपाध्याय का महाप्रयाण : एक महती क्षति

–डॉ० भवानीलाल भारतीय

कल दूरभाष से कोलकाता के श्री चांदरतन दमाणी जी ने उपाध्याय जी के निधन का दुःखद समाचार दिया । उपाध्याय जी से मेरे आधी सदी से अधिक का सम्पर्क और स्नेह सम्बन्ध रहा । वे उत्तर प्रदेश के सुलतानपुर जिले के एक संस्कारी ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे । वैदिक कर्मकाण्ड के प्रति उनका पारिवारिक आकर्षण रहा । आगे चल कर कलकत्ता आर्य समाज के वार्षिक अधिवेशनों पर उन्होंने कई दशकों तक आचार्यत्व का दायित्वपूर्ण कार्य संभाला और अपने ही मार्गदर्शन में पं० आत्मानन्द, पं० नचिकेता आदि कई नवीन कर्मकाण्डी पण्डितों को प्रशिक्षित किया । यों वे अर्थशास्त्र के प्राध्यापक थे किन्तु वेद, संस्कृत तथा शास्त्रों में उनकी गहरी गति थी । उन्होंने वेद मंत्रों के जैसे लोकोपयोगी अर्थ किये हैं, उनसे वैदिक स्वाध्याय में लोगों की रुचि बढ़ी है । अथर्व वेद के पृथ्वी सूक्त का भाष्य इसी कोटि की रचना है ।

वेदाध्ययन और लेखन में प्रवृत्त होने के अलावा उन्होंने बंगाल में आर्यसमाज की गतिविधियों और विकास को लक्ष्य बना कर कलकत्ता आर्यसमाज का इतिहास, आर्यसमाज के विद्वान् और शास्त्रार्थी आदि अनेक शोध परक ग्रन्थ लिखें हैं । सत्यार्थप्रकाश दर्पण सत्यार्थप्रकाश जानकारियों का विश्वकोश ही है ।

उपाध्यायजी बहुभाषाविज्ञ थे । हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत और बंगला में उनकी निर्बाध गति थी । उन्होंने अनेक बंगला ग्रन्थ भी लिखे हैं । निरन्तर आधी शताब्दी तक कलकत्ता आर्यसमाज के मासिक पत्र **आर्य संसार** का सम्पादन कर उन्होंने आर्य पत्रकार जगत् में एक मानदण्ड स्थापित किया है । लेखन के साथ उपाध्याय जी ने वाणी द्वारा भी वैदिक धर्म का भूमण्डल स्तर पर प्रचार किया था । मेरे उनके निजी सम्बन्ध थे । यदाकदा सम्मेलन, समारोहों तथा कलकत्ता के कार्यक्रमों में उनसे भेंट तथा विचार परिवर्तन के अवसर आते थे । मेरा अमृत महोत्सव जब श्री गंगानगर में आयोजित किया गया तो उपाध्याय जी को अध्यक्षता के लिए आमंत्रित किया गया जिसे उन्होंने प्रेमपूर्वक स्वीकार किया । यों कोलकाता तथा श्रीगंगानगर की भौगोलिक दूरी कम नहीं है और यह लम्बी यात्रा काफी कष्टप्रद होती है । एक सात्विक, समर्पित तथा सुशिक्षित विद्वान् का आर्य बौद्धिक जगत् से विदाई लेना एक महती तथा अपूरणीय क्षति है । वे मुझ से बड़े और स्वर्ग का रास्ता भी उन्होंने पहले ही अन्वेषित किया । आगे की पंक्ति में अब हमारा नाम है । उपाध्याय जी का सारा परिवार आर्यसमाजी था । बड़े भाई रमाकान्त, अनुज श्रीकान्त उपाध्याय, शिवाकान्त उपाध्याय तथा भतीजे डॉ० वाचस्पति उपाध्याय उनके परिवार के रत्न थे ।

३१५, शंकर कालोनी
श्री गंगानगर

thearyasamaj.org

''राष्ट्र-सम्वर्धन''

प्रिय राज्य प्रशासन के नायक ।
हो प्रजा अभ्युदय उन्नायक ॥

हो कहीं असत अन्याय नहीं ।
कोई अनाथ असहाय नहीं ।
यम क्षमता श्रम की सराहना,
हो प्रजा कृपण कृशकाय नहीं ।

सर्व शत्रुओं को भयदायक ।
हो प्रजा अभ्युदय उन्नायक ॥१॥

भूमि उर्वरा गोवर्धन हों ।
शक्ति सन्तुलन अश्व चरण हों ।
हो अभय विहारी नर-नारी,
संगठन श्रेय संकर्षण हों ।

संकल्प समुच्चय फलदायक ।
हो प्रजा अभ्युदय उन्नायक ॥२॥

यश शक्ति सन्तुलन कितना हो ।
वैदिक राजाओं जितना हो ।
अखिल विश्व संरक्षण पाये,
प्रिय तुममें तप बल इतना हो

हो विश्व तुम्हारा गुणगायक ।
हो प्रजा अभ्युदय उन्नायक ॥३॥

स्रोत — गोमदु षु णासत्या श्वावद्यातमश्विना ।
वर्ती रुद्रा नृपाव्यम् ॥ यजु० २०-८१॥

— देवा तिथि

देवनारायण भारद्वाज
''वरेण्यम्'' अवन्तिका (प्रथम) रामघाट मार्ग
अलीगढ़-२०२००१ (उ०प्र०)

thearyasamaj.org

"तप नहीं, तो सुख नहीं"

प्रो० ओमकुमार आर्य-उपप्रधान,
आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा

तप के बिना सुख की कल्पना करना भी मूर्खता है, तप जीवन में सुख, शांति, आनंद की आधारशिला है, सच तो यह है कि तप ही जीवन है और तप विहीनता मृत्यु । तप जीवन में सफलता का आधार है । तप से ही मनुष्य जीवन में सच्चे सुख को प्राप्त कर सकता है। जो तप नहीं कर सकता वह जीवन में कभी सुख तो क्या सामान्य सी प्रसन्नता भी प्राप्त नहीं कर सकता । शास्त्र तप की महिमा से भरे पड़े हैं ।

महर्षि पातंजलि के 'योगदर्शन' को ही लें । इस ग्रन्थ के दूसरे अध्याय अर्थात् **'साधना पाद'** का प्रथम सूत्र जो साधना-मार्ग के लिये क्रिया योग का महत्व बतलाता है, उस सूत्र में तप की गणना क्रियायोग के तीन घटकों में की गई है और प्रथम स्थान पर की गई है। सूत्र कहता है —

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रिया योगः ।

योगदर्शन साधनापद सूत्र - अर्थात् तप (Austerity), स्वाध्याय (Self study) और ईश्वर प्रणिनिधान (Faith in and Surrender to God) क्रियायोग कहलाता है । मानव-चोला भी प्रमुखतया तीन का ही समवाय है — शरीर, मन और आत्मा । इन तीनों — शरीर, मन और आत्मा के लिये क्रमशः तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान का विधान किया गया है । तप मात्र शरीर तक ही सीमित नहीं है । द्वन्द्व सहन करने को तप कहा गया है । ये द्वन्द्व शरीर, मन और आत्मा तीनों से संबंधित हो सकते हैं, इसलिये तप भी तीन प्रकार का हो सकता है —

१. शारीरिक / कायिक तप, २. मानसिक तप, ३. आत्मिक तप

शरीर से प्रारंभ करें तो तप भी उत्तरोत्तर स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्मतर होता जाता है और सहन करने में भी अधिक और अधिक कष्टप्रद होता जाता है किंतु जिस-जिस अनुपात में कोई द्वन्द्व सहता है अर्थात् तप करता है उस-उस अनुपात में उसका जीवन उत्तरोत्तर सुखी बनता है, निखरता है । किंतु ऐसा करना आसान कार्य नहीं है, तपती, सुलगती, धधकती भट्ठी में जलने के समान है । महर्षि दयानन्द का जीवन ऐसे तप की एक दुर्लभ मिसाल है जो डंके की चोट पर घोषणा करता है कि परहित की भावना से संघर्ष तपस्वी ही कर सकता है, जन-जन पर प्रभाव भी तपस्वी ही डाल सकता है, कष्टों में भी कांटों से घिरे पुष्प की तरह तपस्वी ही मुस्कुरा सकता है । स्वाध्याय से तप पुष्ट होता है और ईश्वरप्रणिधान तप को अडिग और अविचल बना देता है और ये तीनों मिलकर जीवन के लिये आवश्यक अनुशासन का निर्माण करते हैं ।

'योगदर्शन' के दूसरे अध्याय 'साधनापाद' के प्रथम सूत्र में तप को क्रियायोग के तीन घटकों में गिनाया गया है —

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः । योगदर्शन अध्याय-२ सूत्र।

इसी अध्याय के सूत्र २१ में योग के आठ अंगों की गणना है जिनमें नियम को भी योग का अंग कहा गया है और फिर इसी अध्याय का सूत्र-३ बताता है कि 'नियम' ये पांच हैं —

thearyasamaj.org

शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः ।। योगदर्शन अध्याय-२ सूत्र ३२

इस सूत्र में ध्यान देने योग्य यह बात है कि उपर्युक्त प्रथम सूत्र, ३२ वें सूत्र का ज्यों का त्यों उत्तरार्द्ध है । इससे स्पष्ट होता है कि **'तप'** यूं तो पांच नियमों में एक नियम है किंतु यह इतना महत्वपूर्ण है कि क्रियायोग का भी एक घटक तप है । तप का अंग्रेजी पर्यायवाची ऑस्टेरिटी (Austerity) शब्द है । किंतु Austerity तप का मात्र बाह्य और सतही रूप ही है, तप का आभ्यंतर रूप और तप की आत्मा Austerity शब्द की पहुंच से परे हैं । Austerity मात्र यही तो अर्थ देता है कि सरल जीवन, सादा जीवन, किन्हीं अभावों के बीच जीवनयापन आदि । द्वन्द्व सहने की क्षमता, द्वन्द्वों को झेलते हुये प्रसन्नतापूर्वक जीना, इस उच्चभाव को Austerity व्यक्त नहीं कर सकता ।

तप सुखी जीवन का आधार है, तप सफलता की कुञ्जी है, तप जीवन में विपरीत परिस्थितियों में भी मानव को हँसते, मुस्कराते रखने में सक्षम है । तप को लेकर यह जो विस्तृत चर्चा की गई है इसका आधार यह वेद मंत्र है –

ओं पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते श्रृतास इब्दहन्तस्तत्समाशत ।। ऋग्वेद ९.८३।

अर्थात् हे ज्ञान के स्वामी परमेश्वर तेरा रक्षण सर्वत्र फैला हुआ है । सब ओर व्याप्त हुआ-हुआ तू सबको सुख प्रदान करता है किन्तु तेरे उस सुख को वह अभागा प्राप्त नहीं कर सकता जिसने तप नहीं किया -- अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते -- किंतु जो तपी होते हैं वे ही उस आनंद को प्राप्त कर सकते हैं । तप से जीवन सुखी बनता है, खुशहाल बनता है, तप ही जीवन का बसन्त है, तप ही जीवन की हरियाली है, आदि-आदि । इसी आशय को और आगे बढ़ाया है इससे अगले मन्त्र में जिसकी प्रथम पंक्ति यहाँ उद्धृत है –

तपोष्व्यवित्रं विततं दिवस्पदे.... ऋग्वेद ९.८३.२

अर्थात् तप से मिलने वाली पवित्रता, फिर तज्जन्य आनंद का विस्तार अवर्णनीय है। यह वही जानता है जिसने कभी तप किया है, अन्य नहीं जान सकते । इस मंत्र में तो यहाँ तक कहा गया है कि तप सर्वोपरि है । अतः जीवन में तपानुष्ठान आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

तप से 'पत' (साख/प्रतिष्ठा/प्रामाणिकता) प्राप्त होती है । तप नहीं तो 'पत' भी नहीं। यदि तप के अभाव अर्थात् न तप को उलटी तरफ से पढ़ें तो 'न तप' का परिणाम तुरंत पता चल जाता है, जो कि पतन है । तपस्वी ही यशस्वी होता है, तेजस्वी होता है, वर्चस्वी होता है । तप नहीं तो यश भी नहीं, तेजस् भी नहीं वर्चस् भी नहीं । तप ही सुखों का आधार है, तप से ही सफलता प्राप्त होती है । इस विषय में गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी रचना 'रामचरित मानस' में 'बालकाण्ड' में बहुत कुछ कहा है । यह ठीक है कि वहाँ तुलसीदास ने शिव-पार्वती के पौराणिक संदर्भ और आख्यान को आधार बनाया है किंतु उन द्वारा प्रयुक्त शब्दों विधाता (ब्रह्म) 'विष्णु' 'संभु' 'सेषु' आदि को यदि परमेश्वर के गौणिक नाम मान लिया जाये तो उन द्वारा वर्णित तप-महिमा वैदिक मान्यता पर पूरी तरह खरी उतरती है । उक्त प्रसंग में पार्वती शिव को पतिरूप में प्राप्त करने के लिये अपने माता-पिता से कहती है कि मैं (पार्वती) तप करूंगी । तप से असंभव भी संभव बन जाता है, तप के बिना जीवन में वास्तविक सुख लेशमात्र भी किसी को नहीं मिलता । पार्वती कहती है –

thearyasamaj.org

......तपु सुख प्रद दुःख दोष नसावा ।।
तप बल रचइ प्रपंचु बिधाता । तप बल बिष्णु सकल जग त्राता ।।
तप बल संभु करहिं संधारा । तपबल सेषु धरइ महिभारा ।।
तप अधार सब सृष्टि भवानी । करहि जाइ तपु अस जियें जानी ।।

इस प्रकार महाकवि तुलसीदास कहते हैं कि परमपिता परमेश्वर गौणिक नामों को दृष्टि से, तप-बल से ही जगत् की रचना करते हैं, तप-बल से ही जगत् का पालन करते हैं, तपबल से ही सृष्टि का संहार करते हैं और तप बल से ही पृथ्वी आदि लोकों को धारण करते हैं। इसलिये तप की महिमा अपार है ।

आज सब ओर, व्यक्तिगत जीवन से लेकर राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर जो अशांति, कष्ट, क्लेश और महा भयंकर दुःखों का वातावरण बना हुआ है और उत्तरोत्तर अधिक से अधिक बिगड़ता जा रहा है उसका एक प्रमुख कारण यह है कि सर्वत्र तप का नितान्त अभाव है, घोर अभाव है । तप के न होने से यह 'पतन' उपस्थित हो गया है । मिथ्याचार, अनाचार, भ्रष्टाचार तथा दुराचार का बोलबाला है क्योंकि व्यक्ति अपनी पात्रता से कहीं अधिक पाना चाहता है और वह भी बिना पुरुषार्थ के । भोगवाद और उपभोक्तावाद के चलते आज लालसाओं एवं एषणाद की अग्नि बुरी तरह धधक उठी है, लगभग बेकाबू हो गई है । उसकी लपटों ने झुलस दिया है हमारी नैतिकता को, मर्यादाओं को और समस्त उच्च मानवीय मूल्यों को। इसी करके हमारा आज का तथा-कथित शिक्षित और सभ्य कहलाने वाला समाज हैवानियत और दरिन्दगी की सभी हदें तोड़ कर कुकृत्यों के नित्य नये शर्मनाक रिकार्ड (?) बना रहा है । इन सबकी जड़ में एक ही प्रमुख जिम्मेवार कारण है 'तप का अभाव' हम स्वयं दुःखी है, अन्यों को दुःख पहुंचा रहे हैं क्योंकि हम सब तप से दूर हैं । उपर्युक्त मंत्र, ऋ० ९.८३.१ स्पष्ट शब्दों में घोषणा कर रहा है कि तप विहीन व्यक्ति कभी भी सुखोपभोग नहीं कर सकता **—अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते**

इसके विपरीत सुख तो वे प्राप्त करते हैं जिन्होंने अपने को तपा लिया है —

''श्रृतास इव्दहन्तस्तत्समाशत''

आइए, हम वेदानुसार आचरण करें, तप को जीवन में अपनायें, स्वयं सुखी बनें अन्यों को सुख बांटें । यही सच्चा मानव कर्म है यही मानव-धर्म है —

तप से मनुष्य देव बन जाता,
तप विहीन है दैत्य समान ।
तपोनिष्ठ, तपोधन पूज्य जनों का,
करता सकल विश्व गुण गान ।।
तप ही बल है, तप ही धन है,
तप हैं सुखों का आगार ।
तप से धरा स्वर्ग बन जाती,
तप के बिना नरक संसार ।।

मो०: ०९४१६२९४३४७ जवाहर नगर, पटियाला चौक
फोन - ०१६८१-२२६१४७ जींद (हरियाणा)-१२६१०२

thearyasamaj.org

ओ३म्

''आह ! पं० उमाकान्त जी उपाध्याय चल बसे''

- श्री राजेन्द्र जिज्ञासु

श्री पं० उमाकान्त जी उपाध्याय चल बसे । यह कहते व लिखते हुए बड़ा दुःख होता है । ईश्वर के अटल नियम को कौन टाल सकता है । आप एक लम्बे समय से रुग्ण चल रहे थे । अब चलने फिरने में भी असमर्थ थे । आर्यसमाज मन्दिर में भी नहीं आ सकते थे परन्तु उनका मन आर्यसमाज में ही होता था । दिन रात समाज का ध्यान, समाज के लिए ही सोचते रहते । खाट पकड़ रखी थी तथापि कुछ न कुछ लिखते पढ़ते रहते थे ।

चारपाई पर पड़े-पड़े कई पुस्तकें व लेख लिख डाले । स्वाध्याय में प्रमाद का प्रश्न ही नहीं था । देह-त्याग से दो तीन दिन पूर्व इस विनीत से दूरभाष पर बात करते हुए अपनी नई पुस्तक का प्राक्कथन लिखने की आज्ञा दी जो हमने सहर्ष स्वीकार की । भले ही रुग्ण थे परन्तु मित्रों को, साथी संगियों को निरन्तर याद किया करते थे । कुछ सप्ताह पूर्व अपनी नई पुस्तक **ऋषि वचन-सुधा** पर हम से विचार विमर्श किया । हमारे सुझावों का स्वागत किया।

तन ठीक नहीं था परन्तु मन तो एकदम स्वस्थ था । दिनरात उन्हें ऋषि मिशन की और प्यारे समाज की चिन्ता रहती थी । पड़े पड़े नई-नई पुस्तकों का स्वाध्याय करते रहते थे। आप इस दृष्टि से बड़े भाग्यशाली निकले कि परिवार के लोगों ने आपकी जी जान से सेवा की। वह अपने परिवार द्वारा की जा रही सेवा से पूरे सन्तुष्ट ही नहीं, तृप्त थे। आपने आर्यसमाज की जो सेवा की, उसे सब जानते हैं । सबसे बड़ी सेवा जो समाज की आपने की है वह यह है कि आपने आर्यसमाज को अपना परिवार दिया है । आपका सुपुत्र आर्यसमाज की सेवा के लिए सदा तत्पर रहता है । आपकी बेटी भी सुयोग्या है । उसमें धर्मप्रेम कूट कूट कर भरा हुआ है ।

कुछ वर्ष पूर्व इस सेवक ने उन्हें यह कष्ट दिया कि पूज्य ऋषिवर दयानन्द के विरोध में देशभर के पौराणिक विद्वानों ने एक सभा करके महर्षि के विरुद्ध व्यवस्था दी थी । यह घटना मत पंथों के इतिहास में पूरे विश्व में अनूठी थी कि किसी विचारक सुधारक के विरुद्ध उसके देश की सब दिशाओं के विद्वान् कहीं इकट्ठे होकर विपरीत व्यवस्था दें । कोलकाता विश्वविद्यालय के जिस हाल में यह सभा की गई उसी हाल में पचास वर्ष पश्चात् ऋषि के एक प्यारे शिष्य पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय को सम्मानित किया गया । जहाँ ऋषि की निन्दा की गई वहीं उसकी दिग्विज्य के लिए बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन सरीखे नेता तथा अनेक विद्वान् एकत्र हुए । यह सम्मान उपाध्याय जी से भी कहीं अधिक महर्षि का था ।

उस हाल का चित्र पं० उमाकान्त उपाध्याय जी को उपलब्ध करवाने के लिए कष्ट दिया गया । मान्य उमाकान्त जी का तत्काल उत्तर आया कि अब तो वह हाल रहा नहीं । क्या किया जा सकता है । हमने उन्हें कहा कि पुराने समाचार पत्रों, विभिन्न स्मारिकाओं, साहित्यिक

thearyasamaj.org

पत्रों में उस हाल का चित्र मिल सकता है । किसी को यह कार्य सौंपे ।

आपको इस चित्र का महत्व समझने में देर न लगी । आपने यह कार्य अपने पुत्र व पुत्री को सौंपा । हर्ष का विषय है कि आपकी विदुषी बेटी ने वह चित्र खोज निकाला। हमने उसे छपवा दिया । गुणियों ने इसकी बहुत प्रशंसा की ।

किसी भी नये विषय पर लिखते हुए वह निःसंकोच अपने मित्रों प्रेमियों से परामर्श कर लिया करते थे । अपनी भूल के सुधार के लिए भी सदा तत्पर रहते थे । एक बार आर्यसमाज पर एक अभियोग चलाया गया । आपने हमें कुछ ऐसी अलभ्य पुस्तकें (कोर्ट में पेश करने के लिए) भेजने को कहा जिससे यह प्रमाणित हो सके कि लेखनी व वाणी से पहले उन्मादी मुसलमान मुल्ला ही छेड़छाड़ करते रहे हैं । हमने तत्काल उन्हें कुछ अलभ्य साहित्य भेज दिया । उन्नीसवीं सदी का महर्षि जैसी गन्दी पुस्तक भी तब किसी से नहीं मिल रही थी । हमने उसकी भी एक दुर्लभ प्रति भेज दी । अब यह पुस्तक श्रीमति परोपकारिणी सभा को सौंप दी है । तब उपाध्याय जी ने हमसे पूछा कि आपको ऐसे साहित्य की सुरक्षा की कैसे सूझी । हमने कहा, ''बड़ों की कृपा से ।''

मान्य उपाध्याय जी का उनके समाज नें अभिनन्दन किया । उस अवसर पर अभिनन्दन पत्र उनके सुपुत्र ने प्राप्त किया । अभिनन्दन पत्र हमारे हाथों से दिलवाया गया था । हमने तब कहा था, **पिताश्री के सन्मान व यश के तो भागीदार हो, उनके दायित्व को सम्भालने का भी गौरव प्राप्त करके दिखायें ।** तब आपके चिरञ्जीव ने उत्तर देते हुए समाज को विश्वास दिलाया था कि मैं आजीवन ऋषि-ऋण चुकाता रहूँगा । पिताजी की पताका को हाथ में थामूंगा ।

हमारा मान्य उपाध्याय जी से लगभग अर्द्धशताब्दी का सामाजिक नाता रहा । इस समय यह लेखक 'आर्य संसार' मासिक का सब से पुराना पाठक व लेखक है । आर्यसंसार की अर्द्ध शताब्दी मनाने का हमारा सुझाव स्वीकार करके आपने व आपके समाज ने हमें गौरवान्वित कर दिया ।

आर्यसमाज के साहित्य को समृद्ध बनाने के लिए तथा आर्यसामाजिक पत्रकारिता के क्षेत्र में अपनी सेवाओं के लिए वह स्मरणीय रहेंगे । इच्छा थी कि एक बार कोलकाता जाकर उनके दर्शन किये जावें परन्तु मन की मन में ही रह गई । मृत्यु से कुछ समय पूर्व जब आपने हमसे वार्तालाप किया तब वाणी में वही पहले वाली तेजस्विता थी । हमने सोचा था कि वह दो तीन वर्ष अभी और जियेंगे । हमारे साहित्य के वह बहुत प्रेमी थे । ऐसे प्रबुद्ध विद्वान् को खोना हम एक निजी क्षति मानते हैं । आप ने अपने समाज को प्रेरणा दी कि ''कुरान वेद की छाया में'' तथा ''कुरान सत्यार्थ प्रकाश के आलोक में'' मंगवा कर प्रसारित प्रचारित करें । ऐसे जागरूक विद्वान् को, ऐसे प्रहरी को खोकर समाज कंगाल हो गया है । हर्ष है कि उनका चिरञ्जीव उनके रिक्त स्थान की पूर्ति करने को हमारे पास है।

वेद सदन
अबोहर-१५२१२६

thearyasamaj.org

श्रद्धा तथा अनुशासन

डॉ० रविदत्त शर्मा, पुरोहित

आर्यावर्त के ऋषियों की यह परम्परा रही है कि उपदेश के द्वारा एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को ज्ञान से तृप्त करती रही है । इसी कारण आज भी वेद की निधि सुरक्षित है । इसके लिये कोई प्रचार व्यवस्था नहीं थी । ज्ञान के अभिलाषी जिज्ञासु विद्वान् को खोजते फिरते थे। किसी किसी ने तो ज्ञान प्राप्ति हेतु अपने जीवन को ही समर्पित कर दिया था। उपनिषदों के युग में ज्ञान प्राप्त ही मानव का लक्ष्य बन गया था । अनेकों बाधाओं को दूर कर यह कार्य प्राथमिकता से किया जाता था । उस समय का सिद्धान्त था **'समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्'** श्रद्धालु शिष्य विनम्रता पूर्वक ब्रह्मवेत्ता गुरु के पास जाये और अनुशासन में रहकर विद्याग्रहण करें । परिणाम यह होता था कि वह शिष्य एक दिन पूर्ण विद्वान् होकर आश्रम से विदा होता था ।

इस परम्परा में दो विशेषताएँ प्रतीत होती हैं जिनके कारण पठन-पाठन निर्विघ्न चलता रहा । आज ये विशेषताएँ लुप्त होती जा रही हैं, परिणामस्वरूप शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है । ये विशेषताएँ हैं श्रद्धा और अनुशासन ।

गीता का उपदेश है 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्' श्रद्धालु ज्ञान को प्राप्त करता है । श्रद्धा से सभी कार्य सम्पन्न होते हैं तथा कार्यों का पूर्ण फल प्राप्त होता है । यज्ञ-दान-तप सत्संग आदि श्रद्धा से किये जाते हैं । श्रद्धाविहीन सन्देह में पड़ा रहता है और सन्देह का परिणाम है विनाश । जो लोग श्रद्धा नहीं रखते जीवन भर भटकते फिरते हैं । श्रद्धा से ही अनुशासन बनता है, बिना अनुशासन के व्यवस्था नहीं बनती । श्रद्धा से वञ्चित लोग किसी भी कार्य को करें पूर्ण व्यवस्था न होने से असफलता ही हाथ लगती है जिस संगठन अथवा समाज में श्रद्धालु जन होंगे वह संगठन उन्नति के उच्च शिखर पर पहुंच जायेगा । यही बात पारिवारिक परिसर में भी लागू होती है, जो समुन्नत परिवार हैं उनमें ये दो गुण (श्रद्धा-अनुशासन) अवश्य ही मिलेंगे । श्रद्धालु ही सत्य को जान पाते हैं । परमेश्वर ने सत्य और असत्य को अलग-अलग स्थापित किया, असत्य में अश्रद्धा को तथा सत्य में श्रद्धा को स्थापित किया ।

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः ।
अश्रद्धामनृतेऽदधात् श्रद्धां सत्ये प्रजापतिः।। यजु० (१९-७७)

ऋग्वेद में श्रद्धा का आवाहन किया गया है कि श्रद्धा को हम प्रातःकाल बुलाते हैं, श्रद्धा को दोपहर के समय सब ओर से चाहते हैं, तथा सूर्य के अस्त होने पर चाहते हैं । हे श्रद्धा ! इस संसार में जीवन भर हम श्रद्धालु बने रहें —

श्रद्धां प्रातर्दवामहे श्रद्धां मध्यान्दिनं परि ।
श्रद्धा सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेहनः ।। (ऋ० १०-१५१-५)

(शेषांश पृष्ठ २८ पर)

thearyasamaj.org

॥ ओ३म् ॥

"वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द"

–श्री खुशहाल चन्द्र आर्य

यह तो मैने कई पुस्तकों में पढ़ा है कि मध्यकालिक साम्प्रदायिक आचार्यों जिनमें, सायण, उव्वट व महीधर मुख्य है, इन्होंने वेद-मन्त्रों का भाष्य, मन्त्रों के देवता, छन्द, पद, पदार्थ व सन्दर्भ आदि की उपेक्षा करके मन्त्रार्थ को विनियोग के अनुसार भाष्य किया है जिससे अर्थ का अनर्थ हो गया है । जैसे वेदों में "गौवध" आया है । इन आचार्यों ने गोवध का सीधा अर्थ गो का वध करके यज्ञों में डालना कर दिया । इसी अर्थ से यज्ञों में पशुबलि का प्रचलन हो गया जिससे महात्मा बुद्ध जैसे लोगों का ईश्वर, वेद और यज्ञों के प्रति श्रद्धा भाव उठ गया । महर्षि दयानन्द ने बताया कि गो के कई अर्थ होते हैं । गाय के अतिरिक्त, सूर्य की किरण, इन्द्रियाँ, वाणी आदि को भी गो कहा जाता है । यहाँ गो का तात्पर्य इन्द्रियाँ है, यानि इन्द्रियों पर संयम रखना "गौवध" होता है । इस प्रकार महर्षि दयानन्द ने वेदों की रक्षा की।

पूज्य आचार्य पं० उमाकान्त जी उपाध्याय ने एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम है **"वेद और दयानन्द ।"** इस पुस्तक में आचार्य जी में विनियोग को बहुत अच्छी प्रकार समझाया है । इस पुस्तक को पढ़कर मैंने भी विनियोग को काफी समझा है । अन्य पाठकगण भी इसको समझ पायें इसलिए उसी पुस्तक का एक अंश मैंने एक लेख के रूप में उद्धृत किया है, वह इस भाँति है :—

वेद और विनियोग :- स्वामी दयानन्द ने वेदों के सम्बन्ध में प्रचलित अनेक भ्रमों, अन्धविश्वासों, ऐतिहासिक भूलों आचार्यों की मान्यताओं के विपरीत भाष्यों में भूलों का निराकरण किया है । वेद भाष्यों के सम्बन्ध में सायणाचार्य आदि मध्यकाल के भाष्यकर्ता आचार्यों ने मन्त्रों के विनियोग के प्रसंग में भूल की है । आचार्य सायण, आचार्य उव्वट, आचार्य महीधर आदि ने विनियोगों के आधार पर मन्त्रों का अर्थ किया है । वेद में आये हुए मन्त्रों में पद, पदार्थ, देवता, आदि का विचार करके अर्थ करना समीचीन होगा । किन्तु इन मध्यकालिक साम्प्रदायिक आचार्यों ने उनके समय में प्रचलित विनियोगों के आधार पर मन्त्रों के अर्थ किये हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि इन आचार्यों ने मन्त्रों के पद, पदार्थ, सन्दर्भ आदि सबकी उपेक्षा करके मन्त्रार्थ को विनियोग के अनुसार भाष्य किया । अब देखना यह है कि विनियोग है क्या और कैसे वह मन्त्रों के अर्थों को प्रभावित करता है ।

विनियोग क्या है :– विनियोग शब्दों में वि-नि-योग हैं । योग शब्द है जिसका अर्थ है जुड़ना, मिलना, जोड़ना आदि (युजिर योगे धातु है) वि और नि उपवर्ग हैं । वि का अर्थ है विशेष रूप से और नि का अर्थ है निश्चित रूप से । सो किसी मन्त्र को किसी कार्य

thearyasamaj.org

में, किसी कर्मकाण्ड में विशेष प्रकार से निश्चित रूप से जोड़ लेना, उस मन्त्र का इस कर्मकाण्ड में विनियोग है । उदाहरण के लिए आर्य परम्परा में सोलह संस्कारों में कर्णवेध एक संस्कार है । इस कर्ण वेध संस्कार में शिशु के कान के निचले भाग ललरी को बींधं दिया जाता है। उसमें छेद किया जाता है । जिस समय कान में छिद्र किया जाता है, उस समय निम्न मन्त्र का पाठ किया जाता है –

''भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षि भिः यजत्राः ।
स्थिरै रङ्गैः, स्तु ष्टुवासं स्त नू भिर्व्य रोमहि देवहितं यदा युः ।।'' यजु० २५-२९

इसका तात्पर्य यह हुआ कि भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम इस मन्त्र का विनियोग कर्णवेध नामक संस्कार में हुआ है । सो विनियोग का अर्थ हुआ – किसी संस्कार में किसी यज्ञकार्य में, किसी कर्मकाण्ड में, किसी अवसर विशेष पर, किसी मन्त्र का पाठ करना या उस मन्त्र को पढ़कर कोई कर्मकाण्ड करना या यज्ञ में आहुति डालना ।

मध्यकालिक आचार्यों का मत :– सायणाचार्य आदि मध्यकालिक आचार्य की मान्यता यह है कि मन्त्रों के भाष्य या अर्थ उनके विनियोग के अनुसार करना चाहिए । सो इन मध्यकालिक आचार्यों का सिद्धान्त हुआ कि अर्थ या भाष्य को मन्त्र के विनियोग का अनुगामी होना चाहिए।

स्वामी दयानन्द का मत :– स्वामी दयानन्द का कहना है कि मन्त्रार्थ को विनियोग से स्वतंत्र होकर उसके प्रकरण-सन्दर्भ पद, पदार्थ के अनुकूल करना चाहिए । इसका तात्पर्य यह हुआ कि मन्त्रार्थ अपने सन्दर्भ में विनियोग से स्वतन्त्र है और विनियोग मन्त्रार्थ का अनुगामी रहे ।

मध्यकाल के आचार्यों के मत में विनियोग स्वतंत्र है और मन्त्रार्थ को विनियोग के पीछे चलना चाहिए । स्वामी दयानन्द की मान्यता है, मन्त्रार्थ अपने सन्दर्भ, पद, पदार्थ के अनुसार स्वतन्त्र रहना चाहिए और विनियोग मन्त्रार्थ का, मन्त्रों के अर्थो की भावनाओं के अनुकूल होना चाहिए । अर्थात् विनियोग को मन्त्रार्थ का अनुगामी होना चाहिए, मन्त्र के अर्थ के पीछे चलना चाहिए ।

कर्णवेध संस्कार में ''भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम'' इत्यादि का विनियोग इसलिए है कि इस मन्त्रांश का अर्थ है कि हम (कर्णेभि) कानो से भद्र सुने (श्रृणुयाम) किन्तु तब भूल हो जाती है जब हमारे भाष्यकार यह कहने लग जाते हैं कि यह मन्त्र है ही कर्णवेध के लिए। मन्त्र में और भी अनेक कुछ है ।

मन्त्र का पूरा अर्थ इस प्रकार है – हे यजत्रादेवाः । हे यजनीय, सत्करणीय, दिव्यगुण विशिष्ट परमेश्वर ! हम कानों से भद्र सुनें, आँखों से भद्र कल्याणकारी ही देखें, हम सुदृढ़ स्वस्थ अंगों से आपकी स्तुति करते हुए पूर्ण आयु को प्राप्त करें । इस मन्त्र में कानों से भद्र सुनने, आँखों से भद्र देखने और स्वस्थ दृढ़ अंगों से प्रभु परमेश्वर की प्रार्थना करते हुए पूर्ण आयु प्राप्त करने की प्रार्थना है । कान के छिद्र करने की तो कोई बात है ही नहीं। पाठक

thearyasamaj.org

यह सहज अनुमान कर सकते हैं कि मन्त्र के अर्थ या भाष्य को मन्त्र के देवता, छन्द, पद, पदार्थ के अनुसार करना ही उचित है । मंत्रार्थ को विनियोग के पीछे चलाना या पद— पदार्थ की उपेक्षा करके विनियोग के अनुसार अर्थ को तोड़ना-मरोड़ना अन्याय है । मन्त्रार्थानुसार ही विनियोग उचित है, न कि विनियोग के अनुसार अर्थ । अन्ततः किस मन्त्र का कहाँ, किस कर्मकाण्ड में विनियोग हो, कहाँ विनियोग न हो, यह एक महत्वपूर्ण समस्या है । मन्त्र तो अपौरुषेय है, परमेश्वर ने मानव के कल्याणार्थ उन्हें प्रदान किया । किस मन्त्र में क्या पद है, क्या छन्द है, क्या पूर्व है, क्या पर है, ये सब प्रभुप्रदत्त होने के कारण प्रश्न कोटि से ऊपर हैं । किन्तु कर्मकाण्ड और उनमें करणीय क्रियाएँ, क्रियाओं में पठनीय मंत्र, किस मन्त्र को पढ़कर कौन-सी क्रिया की जाय, यह सब निर्णय-निर्धारण ऋषियों ने परवर्ती काल में किया है । चारों संहिताओं में बीस हजार से अधिक मन्त्र हैं । कोई भी मन्त्र कहीं भी नहीं पढ़ा जाता । कहाँ, किस कर्म में किस मन्त्र को पढ़ा जाये ? बीस हजार से अधिक मन्त्रों में से चुनना है, यह सब परवर्ती काल में ऋषियों ने निर्धारित किया है । उनके चुनने का आधार तो मनमानी हो नहीं सकता, कोई आधार तो होना ही चाहिए, और वह आधार अर्थ को छोड़कर अन्य तो होना ही नहीं चाहिए । अतः अर्थ के आधार पर ही विनियोग होना उचित है । किसी भी मंत्र का कहीं भी विनियोग मनमानी करके फिर मन्त्रार्थ को विनियोग के अनुसार करना तो अनुचित है, अन्याय है । किन्तु दुर्भाग्य है कि सायण, महीधर आदि आचार्यों ने विनियोग के अनुसार मंत्रों का अर्थ किया है ।

इस लेख से जान लिया गया कि मध्यकालीय आचार्यों ने जो वेद-भाष्य किये, वे गलत इसलिए हो गये कि उन्होंने मन्त्रों का केवल विनियोग देखकर ही भाष्य कर दिया, जबकि उनको मन्त्र का देवता, छन्द, पद, पदार्थ व सन्दर्भ यानी किस प्रकरण में यह मन्त्र लिखा गया है, यदि यह देखकर भाष्य करते तो उनका भाष्य भी गलत नहीं होता । पर महर्षि दयानन्द ने इन सब बातों का ध्यान रखते हुए, अपने वेद-भाष्य किये हैं । इसीलिए वे सही व उत्तम हैं और तर्क व विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरते हैं । यह महर्षि का मनुष्य-मात्र पर एक अनुपम उपकार है, इसीलिए महर्षि को वेदोद्धारक माना गया है ।

C/o गोविन्दराम आर्य एण्ड सन्स
१८०, महात्मा गांधी रोड़
दो तल्ला, कोलकाता-७००००७
फोन : ०३३-२२१८-३८२५,
०३३-६४५०५०१३
मो: ९८३०१३५७९४

—০—

thearyasamaj.org

॥ ओ३म् ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती के जन्म दिवस आदि तिथियों का गणनात्मक विवेचन

मानव समाज में महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित कुछ विशेष तिथियों का बहुत महत्व है। उन विशेष तिथियों के आगमन पर भक्त अनुयायी उनके सद्गुणों और उनके महान् कार्यों को स्मरण करते हुए इन तिथियों को पर्वों के रूप में श्रद्धापूर्वक भक्तिभाव से मनाते हैं। जैसे मर्याया पुरुषोत्तम श्रीराम का जन्मदिन, चैत्र शुक्ला नवमीं को तथा योगेश्वर श्रीकृष्ण का जन्म दिन भाद्रपद कृष्णपक्ष की अष्टमी को, श्रद्धा और भक्तिभाव से मनाया जाता है। इसी प्रकार आर्य समाज के संस्थापक, वेदों के उद्धारक, महान् समाज सुधारक और आदर्श संन्यासी स्वामी दयानन्द जी सरस्वती का जन्म दिवस सभी आर्यों द्वारा फाल्गुन मास कृष्ण पक्ष की दशमी को यज्ञ-हवन एवं भजन-उपदेशों के साथ श्रद्धापूर्वक मनाया जाता है। इसी प्रकार आर्य समाज स्थापना दिवस एवं स्वामीजी का बलिदान दिवस भी श्रद्धाभाव से मनाया जाता है। किन्तु प्रायः यह देखने में आता है कि स्वामी दयानन्द जी की जन्म तिथि के सम्बन्ध में सभी आर्य विद्वत्जन एक मत नहीं हैं। कारण अनेक हो सकते हैं। तथापि जो-जो तिथियाँ विभिन्न पुस्तकों में उपलब्ध है, उन्हीं में गणनात्मक विवेचन से उचित तिथि को चिन्हित करने का प्रयत्न करेंगे।

हमारे देश में गत कई वर्षों से मुख्य रूप से तीन संवत्/कैलेण्डर व्यवहारिक रूप से प्रचलन में स्वीकार्य हैं। **प्रथम-ईस्वी कैलेण्डर** इसका प्रचलन लगभग सम्पूर्ण भू-मण्डल के देशों में है। यह कैलेण्डर न तो सौरमास पर और न ही चन्द्रमास पर आधारित है, किन्तु इसकी तिथियों का समायोजन एवं निर्धारण इस सूझ-बूझ से किया गया है कि सैकड़ों वर्षो तक इसकी तिथियाँ निश्चित समय पर ही आती हैं। **द्वितीय-विक्रमी संवत्** – इसका सम्बन्ध देश की बहुल संख्यक हिन्दू, आर्य, बौद्ध, जैन व सिख आदि मतावलम्बियों से है। यह संवत् चन्द्रमास पर आधारित हैं तथा इन सम्प्रदायों के अधिकतर पर्व, त्योहार व व्रत-उपवास आदि चन्द्रमास की तिथियों पर आधारित हैं। **तृतीय-शक संवत्**–यह संवत्, सौर मास पर आधारित सर्वाधिक शुद्ध वैदिक एवं वैज्ञानिक कैलेण्डर है। वर्ष १९५२ में भारत सरकार ने इसे राष्ट्रीय कैलेण्डर स्वीकार किया था किन्तु सरकार की इच्छा शक्ति की न्यूनता के कारण यह संवत् भारतीय जनमानस में लोकप्रिय एवं व्यवहारिक नहीं हो सका। इसका मुख्य कारण अधिकतर भारतीयों की अज्ञान, अविद्या और पौराणिक पंचांगों का अन्धानुकरण हैं।

स्वामी दयानन्द के जीवन से सम्बन्धित तिथियों का उल्लेख, चन्द्रमास की तिथियों एवं ईस्वी कैलेण्डर की तारीखों में, अनेक विद्वानों की पुस्तकों में उपलब्ध है। सर्वप्रथम हम स्वामी जी की जन्म तिथि के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न पुस्तकों और विद्वानों के लेखों के आधार पर विवेचन करतें हैं —

१. आर्य मुसाफिर प० लेखराम ने स्वामी जी का जन्म दिवस संवत् १८८१ के अन्तिम मास फाल्गुन में स्वीकार किया है।

२. स्वामी सत्यानन्द जी ने अपनी पुस्तक **श्रीमद्दयानन्द प्रकाश** में स्वामी जी का जन्म वर्ष संवत् १८८१ लिखा है।

३. स्वामी ओमानन्दजी सरस्वती (गुरुकुल झज्जर) ने अपनी पुस्तक **आर्य समाज के बलिदान**

thearyasamaj.org

में ऋषि का जन्म १८२४ ई० तदनुसार १८८१ संवत् लिखा है। किन्तु उपर्युक्त किसी भी विद्वान् द्वारा मास व तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है।

४. आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४५५ खारी बावली दिल्ली से प्रकाशित लघु पुस्तिका **महर्षि दयानन्द सरस्वती (संक्षिप्त रंगीन सचित्र जीवनी)** में उनका जन्म दिन संवत् १८८१ फाल्गुन बदी दसवीं तदनुसार १२ फरवरी १८२४ लिखा है।

५. आचार्य दार्शनीय लोकेश, जो कि प्रसिद्ध वैदिक पंचांगकर्त्ता हैं, ने प्रमाणों के आधार पर स्वामी जी का जन्म दिन, १२ फरवरी १८२५ ई० तदनुसार संवत् १८८१ फाल्गुन बदी दसवीं, अपने पंचांग में दर्शाया है।

आइये अब हम गणनात्मक विवेचन से यह जानने का प्रयत्न करें कि संवत् १८८१ फाल्गुन बदी दसवीं का सम्बन्ध ईस्वी वर्ष १८२४ से है अथवा १८२५ से है। प्रथम गणना १८८१ फाल्गुन बदी दसवीं के अनुसार —

फाल्गुन बदी दसवीं १८८१ से फाल्गुन बदी नवमीं १९०० तक —	१९ वर्ष
फाल्गुन बदी दसवीं १९०० से फाल्गुन बदी नवमीं २००० तक —	१०० वर्ष
फाल्गुन बदी दसवीं २००० से फाल्गुन बदी नवमीं २०७० तक —	७० वर्ष
योग	- १८९ वर्ष
आगामी फाल्गुन बदी दसवीं, २०७१ को	- १९० वर्ष

१२ फरवरी १८२४ के अनुसार गणना –

१२ फरवरी १८२४ से ११ फरवरी १९०१ तक	- ७७ वर्ष
१२ फरवरी १९०१ से ११ फरवरी २००१ तक	- १०० वर्ष
१२ फरवरी २००१ से ११ फरवरी २०१४ तक	- १३ वर्ष
योग	- १९० वर्ष
आगामी १२ फरवरी २०१५ को	- १९१ वर्ष

१२ फरवरी १८२५ के अनुसार गणना –

१२ फरवरी १८२५ से ११ फरवरी १९०१ तक	- ७६ वर्ष
१२ फरवरी १९०१ से ११ फरवरी २००१ तक	- १०० वर्ष
१२ फरवरी २००१ से ११ फरवरी २०१४ तक	- १३ वर्ष
योग	- १८९ वर्ष
आगामी १२ फरवरी २०१५ को	- १९० वर्ष

ईस्वी तिथि की उपर्युक्त दोनों गणनाओं में १२ फरवरी १८२५ की तिथि का **मेल फाल्गुन** बदी दसवीं १८८१ से ठीक बैठता है, जबकि वर्ष १८२४ की गणना से एक वर्ष अधिक बनता है। अतः उपर्युक्त गणना के आधार पर स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म दिन १२ फरवरी १८२५ प्रमाणित होता है। इस प्रकार आगामी १२ फरवरी २०१५ को ऋषिवर दयानन्द की १९० वीं जयन्ती होगी। वैदिक सौर शक संवत् के अनुसार यह तिथि, **तपस्य मास गते २३, १७४७ तदनुसार १२ फरवरी १८२५** बनती है। क्योंकि चन्द्रमास की तिथियाँ निश्चित समय पर नहीं आतीं, तिथियाँ कम-ज्यादा

thearyasamaj.org

और आगे-पीछे होती रहती है । एक वर्ष में लगभग ११ दिनों का अन्तर पड़ जाता है । अतः जो तिथि निश्चित समय पर न आये, उस तिथि में जन्म दिन मनाना कितना उचित है, इस बात पर विचार करना चाहिए । जिस प्रकार ईस्वी संवत् की तिथियाँ निश्चित समय पर आती हैं, उसी तरह वैज्ञानिक आधार पर सर्वाधिक शुद्ध कैलेण्डर शक संवत् की सभी तिथियाँ हजारों वर्षों तक निश्चित समय पर आती हैं, अतः स्वामी दयानन्द का जन्म दिन, **तपस्य मास गते २३, तदनुसार १२ फरवरी,** को प्रति वर्ष मनाना चाहिए, ताकि वैदिक सौर संवत् से हमारा लगाव पैदा हो और वैदिक पंचांग से सम्बन्धित ज्ञान-विज्ञान बढ़े ।

जन्म तिथि की भाँति आर्य समाज के स्थापना दिवस के सम्बन्ध में भी मतभेद हैं। ईस्वी संवत् की **१० अप्रैल १८७५** की तिथि तो अनेक पुस्तकों में मेल खाती है किन्तु विक्रमी संवत् की तिथियों में अन्तर है । किसी पुस्तक में, **चैत्र सुदी पंचमी संवत् १९३२, शनिवार** है तो किसी में, **चैत्र शुक्ला प्रतिपदा, बुधवार संवत् १९३२**, दर्शाई गई है । **१० अप्रैल १८७५** के दिन शक संवत् के **माधव मास गते २०, १७९७** की तिथि बनती है और इन दोनों कैलेण्डरों की उक्त तिथियाँ प्रति वर्ष निश्चित समय पर आती हैं । आप सब यह भली-भांति जानते और मानते हैं कि ऋषिवर दयानन्द की श्रद्धा का केन्द्र पावन वेद थे, दुर्भाग्य से समय अभाव के कारण वे पौराणिक पंचांगों पर अधिक ध्यान नहीं दे पाये । अतः हमारा ये पावन कर्त्तव्य है कि उनसे सम्बन्धित तिथियों वैदिक पंचांग के अनुसार मनाना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धा एवं वैदिक संस्कृति की रक्षा एवं सम्मान करना है । प्रकृति के नियमानुसार अप्रैल मास में चन्द्रमास के चैत्र शुक्ल पक्ष का प्रारम्भ होना केवल पौराणिक पंचांगकर्ता का ही चमत्कार हो सकता है। वास्तव में वैदिक रीति से चैत्र मास के शुक्ल पक्ष का प्रारम्भ **२० फरवरी के बाद और २२ मार्च से पूर्व होना चाहिए** । जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी श्री राम के जन्म दिवस के सम्बन्ध में रामचरित मानस के बालकाण्ड में लिखा है — **नोमी तिथि मधुमास पुनीता । सुकल पछ अभिजीत हरिप्रीता ।।** किन्तु दुर्भाग्य से उनके पौराणिक अन्धभक्त भी रामचरित मानस की इस चौपाई के रहस्य को नहीं समझ पाये हैं । वे तो वासन्ति नवरात्रे और श्री राम जी का जन्म दिन अप्रैल में भी मना लेते हैं । चैत्र चन्द्रमास का प्रथम मास है और मधु सौरमास का प्रथममास है । अतः उचित तो यह है कि रामनवमी वसन्त ऋतु के प्रथम मास मधुमास में चैत्रमास की शुक्ला-नवमी को ही मनानी चाहिए ।

अतः आप सब वेद और वैदिक संस्कृति के प्रति श्रद्धावान् हिन्दू/आर्यजनों से मेरा यही विनम्र अनुरोध है कि अपने दिव्य महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित तिथियों को वैदिक पंचांग की रीति-नीति से ही मनाना उचित है । इसी शुभ कामना व भावना के साथ । इत्योम् शम्।

विनयवत्

महात्मा ओम् मुनि

वैदिक भक्ति साधन आश्रम

आर्यनगर, रोहतक (हरियाणा)

-o-

thearyasamaj.org

(पृष्ठ २ का शेषांश)

है और उमाकान्त जी इस कालेज में अर्थशास्त्र में ऑनर्स तक की कक्षाओं को प्रतिष्ठापूर्वक पढ़ाते हुए, कामर्स विभाग के वरिष्ठ प्राध्यापक रहे । कालेज की सेवा से सावकाश होकर आप वेद और आर्य समाज के लिए सर्वात्मना समर्पित हो गये ।

आर्य समाज कलकत्ता के अधिकारी उमाकान्त जी को आर्य समाज का उपमंत्री, मंत्री आदि पदों पर निर्वाचित करना चाहते थे, किन्तु उमाकान्त जी ने सार्वजनिक रूप से घोषणा कर दी कि वे आर्य समाज में कभी भी अधिकारी का पद नहीं स्वीकार करेंगे। उन्होंने आर्य समाज के अधिकारियों को सुस्पष्ट रूप से यह कह दिया कि वे आर्य समाज में एक ब्राह्मण विद्वान् उपदेशक के रूप में ही सेवा करने का संकल्प रखते हैं और कोई भी अधिकारी नहीं बने । अन्तरंग में आर्य समाज के अधिकारियों ने इन्हें सदा ही प्रतिष्ठित विद्वान् सदस्य के रूप में निर्वाचित किया। कई वर्षों से आचार्य जी ने अन्तरंग की सदस्यता से भी अवकाश ग्रहण कर लिया था ।

आर्य समाज कलकत्ता ने अपना मासिक मुखपत्र **'आर्य संसार'** निकालने का निश्चय किया । उमाकान्त जी आरम्भ से ही इसके सम्पादक रहते आ रहे थे । २००८ ई० में आर्य संसार की स्वर्ण जयंती मनायी गयी । उस अवसर पर बड़ी भव्य स्वर्ण जयंती स्मारिका प्रकाशित हुई थी । सम्पादन कला की दृष्टि से यह उच्च कोटि की पत्रिका प्रमाणित हुई । आर्य संसार को प्रकाशित होते अब **२०१४ ई० में ५६ वर्ष हो रहे हैं, मृत्यु पर्यन्त उमाकान्त जी ही उसके सम्पादक थे** ।

उमाकान्त जी लगभग ५० वर्षों से आर्य समाज कलकत्ता और आर्य समाज बड़ाबाजार के साप्ताहित सत्संगों, वार्षिकोत्सवों और अन्य प्रमुख आयोजनों पर प्रमुख वक्ता आचार्य के स्थान पर अपनी सेवाएं देते आ रहे थे ।

आर्य समाज कलकत्ता के सत्संगों की अपनी विशिष्ट स्थिति है । एक तो यहां उपस्थिति अच्छी होती है, ढाई-तीन सौ तक की उपस्थिति भी हो जाती है । कोलकाता बड़े शहरों में है और कलकत्ता आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग में उपस्थित लोग एक ओर उच्चकोटि के व्यवसायी होते हैं तो दूसरी ओर अच्छे पढ़े-लिखे स्वाध्यायशील भी होते हैं । कलकत्ता समाज में सदा ही साधना प्रवृत्ति के भी कुछ लोग सत्सगों में उपस्थित होते हैं । पंडित शंकरनाथजी, पंडित अयोध्या प्रसाद जी, पंडित सुखदेव जी विद्यावाचस्पति, आचार्य रमाकान्त जी शास्त्री जैसे उद्भट, वाग्मी, व्याख्यान-कुशल, शास्त्र पारंगत विद्वानों की यह व्याख्यान-वेदी है । इसकी अपनी परम्परा है । उमाकान्त जी इसी परम्परा की एक कड़ी बनकर अपने सत्संगी श्रोताओं को पिछले ५०-५१ वर्षों से संतुष्ट एवं तृप्त करते चल रहे थे । इनके आचार्यत्व काल में संध्या, अग्निहोत्र, वेदकथा, उपनिषद्कथा आदि का हृदयग्राही सुन्दर पुरोगम सफलतापूर्वक चल रहा था । ये आर्य समाज बड़ाबाजार के भी आचार्य थे ।

उमाकान्त जी पेशे से अध्यापक और अपने विषय को अपने श्रोताओं तक पहुंचाने में सक्षम थे । साथ ही उमाकान्त जी एक कुशल पुरोहित और विद्वान् भी थे । आर्य समाज कलकत्ता के वेद पारायण यज्ञों पर श्रद्धा उद्वेलित हजारों भक्तों की श्रद्धाभावना को तृप्त करते हुए बहुत वर्षों से वेद पारायण यज्ञों के ब्रह्मा आप ही बनाये जाते थे ।

उमाकान्त जी कुशल वक्ता के साथ सक्षम लेखक भी थे । 'आर्य संसार' में आपका सम्पादकीय निस्पृह-निष्पक्ष-तटस्थ भूमि से समाज और संगठन को दिशादान की प्रेरणा करता रहता था । उमाकान्त जी ने अर्थशास्त्र पर एक पाठ्य पुस्तक के अतिरिक्त कई छोटी-बड़ी पुस्तिकाएं लिखी हैं जिन्हें आर्य

thearyasamaj.org

समाज कलकत्ता और आर्य समाज बड़ाबाजार, कोलकाता ने प्रकाशित किया है। आपकी कई पुस्तकों की अनेकों आवृत्तियां प्रकाशित हो चुकी हैं। उमाकान्त जी को आर्य समाज के विद्वान् वक्ता की हैसियत से अखिल भारतीय एवं सार्वदेशिक ख्याति प्राप्त थी। आपने आर्य समाज के मिशन को लेकर विदेश यात्राएं की थीं। सन् १९७६ ई० में आर्य समाज का एक दल कोलकाता से विदेश यात्रा पर गया था। यह दल यूरोप और अमेरिका के कई देशों की यात्रा पर था। इस दल ने आचार्य उमाकान्त जी को प्रचारार्थ अपने साथ ले लिया था। यह दल स्विट्ज़रलैण्ड, फ्रांस, इंग्लैण्ड, रोम, इटली, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, कनाडा आदि देशों के कई स्थानों पर गया। जहां भी सम्भव होता था आर्य समाजियों को संगठित करना और वैदिक धर्म के प्रचार का प्रयास करना इस दल का प्रमुख उद्देश्य था। इस यात्रा की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि श्री लालमनजी आर्य, श्री सीतारामजी आर्य के साथ आचार्य उमाकान्त जी की प्रेरणा पर भारतीय मिशन के कुछ श्रद्धालु सज्जनों ने जेनेवा, स्विट्जरलैण्ड में आर्य समाज जेनेवा की स्थापना की। जेनेवा में आर्य समाज की स्थापना इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है और आचार्य उमाकान्त जी इसे अपने जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि समझते थे।

सन् १९७८ ई० में केनिया की राजधानी नैरोबी में अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन का आयोजन हो रहा था। आर्य समाज केनिया के प्रसिद्ध आर्य समाजी परम धनाढ्य व्यवसायी श्री सत्यदेव भारद्वाज जी के आग्रह एवं आर्य समाज कलकत्ता तथा आर्य समाज बड़ाबाजार के सहयोग से आचार्यजी ने नैरोबी की यात्रा की। वहां आचार्य जी ने हिन्दी और अंग्रेजी—दोनों भाषाओं में अनेक विषयों पर व्याख्यान दिये और अन्तर्राष्ट्रीय आर्यजगत के क्षेत्र में सफल वक्ता एवं मौलिक चिन्तक के रूप में आपकी प्रतिष्ठा हुई। उसी समय अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन लन्दन में करने का निश्चय हुआ। आर्य समाज लन्दन के सुयोग्य विद्वान् प्रधान प्रो० सुरेन्द्रनाथ भारद्वाज ने उमाकान्त जी को लन्दन सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए आग्रह किया।

सन् १९८० ई० में लन्दन में अन्तराष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन बड़ी सजधज के साथ हो रहा था। उधर लंदन से आचार्य उमाकान्त जी के लिए एकाधिक निमंत्रण पत्र आ चुके थे, किन्तु एक अध्यापक, पुरोहित वृत्ति ब्राह्मण के लिए अन्तराष्ट्रीय यात्रा का व्ययभार कठिन होता है। इस अवसर पर आर्य समाज बड़ाबाजार के उत्साही कार्यकर्त्ता श्री मोहनलालजी ने यातायात की व्यवस्था के भार से सदा की भांति आचार्य जी को मुक्त कर दिया और आचार्यजी लन्दन महासम्मेलन में सम्मिलित हुए। इस सम्मेलन में एक सर्वधर्म सम्मेलन का आयोजन भी हुआ जिसमें लन्दन सम्मेलन के संयोजकों ने आचार्य उमाकान्त जी को हिन्दू वैदिक धर्म का प्रतिनिधि वक्ता मनोनीत किया। आचार्य जी ने बड़ी कुशलता, शिष्टता एवं नम्रता से वेदधर्म के सार्वभौमिक स्वरूप को प्रस्तुत किया जिसका सारांश यह था कि सारे संसार का ईश्वर एक है, अतः धर्म भी एक ही है और वह वैदिक धर्म है। वैदिक धर्म संसार को एक मानता है। मनुष्य ही नहीं बल्कि प्राणिमात्र परमेश्वर की संतान है। वैदिक धर्म न किसी अवतार, पैगम्बर, मसीहा या अन्य बिचौलिये की आकांक्षा रखता है, न वेद के अतिरिक्त किसी अन्य ग्रंथ को ईश्वरीय मानता है। विषय की संश्लिष्टता, वर्णन एवं वक्तृत्वकला इतनी प्रभावपूर्ण रही कि सारी सभा में व्याख्यान की चर्चा होती रही। एक तुक की बात थी कि एक विश्वधर्म महासभा में स्वामी विवेकानन्द का व्याख्यान हुआ था। एक और अन्तर्राष्ट्रीय धर्म महासभा में पंडित अयोध्या प्रसाद जी का व्याख्यान हुआ था और अब लन्दन की धर्म महासभा में उमाकान्त जी उपाध्याय का व्याख्यान हुआ। वे दोनों कोलकाता के ही निवासी थे और अब उमाकान्त जी भी

thearyasamaj.org
कोलकाता के ही निवासी निकले । व्याख्यान की उपादेयता से प्रभावित होकर धर्म महासभा के अध्यक्ष ने इसके प्रकाशन का आग्रह किया और यह धर्म-महासभा का व्याख्यान प्रथम अंग्रेजी में आर्य समाज कलकत्ता ने प्रकाशित किया । इस व्याख्यान की अंग्रेजी की प्रतियां जब रूस से आये पर्यटकों को आर्य समाज कलकत्ता में भेंट की गयी तो रूसी यात्रियों ने उस व्याख्यान की हिन्दी प्रतियां लेने की अधिक इच्छा व्यक्त की । व्याख्यान हिन्दी में तो छपा न था, अतः थोड़ी सी लज्जा का अनुभव स्वाभाविक था । फिर तो आर्य समाज कलकत्ता ने हिन्दी, अंग्रेजी दोनों भाषाओं में उस व्याख्यान को प्रकाशित किया और भारत के रामकृष्ण विवेकानन्द मिशन, कृष्णा कान्शेसनेस जैसे भारतीय मूल के मिशनों ने विदेशों में प्रचार के लिए इस व्याख्यान को बड़ी प्रियता के साथ अपनाया। २००२ ई० में आचार्यजी प्रचार में बरमिंघम भी गये थे ।

उमाकान्त जी कई वर्षो तक आर्य समाज कलकत्ता के संगठन को निरापद रूप में चलाते रहने की योजना बनाते रहते थे । इधर कुछ वर्षों से संगठनात्मक अभिरुचि से संन्यस्त्र होकर शुद्ध विद्या, पौराहित्य, आचार्यत्व, आध्यात्मिक साधना को लक्ष्य बनाकर आप आर्य समाज की सेवा में निरत रहे। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने आपको धर्मार्य सभा का सदस्य मनोनीत कर रखा है । अजमेर के ऐतिहासिक निर्वाण-शताब्दी समारोह १९८३ ई० पर समारोह समिति ने पंडित उमाकान्त उपाध्याय को साहित्य के क्षेत्र में उनकी विशिष्ट सेवाओं के लिए बहुमान पुरस्कार, प्रशस्ति-पत्र देकर सम्मानित किया था। आचार्य जी को घूड़मल प्रह्लाद राय एवं मेघजी भाई साहित्य पुरस्कार, गंगाप्रसाद उपाध्याय पुरस्कार जैसे अनेकों पुरस्कार प्राप्त थे । आचार्य जी को अनेकों पुरस्कार एवं प्रशस्ति पत्र भेंट किये गये थे । आचार्य जी के १२-१४ उच्च कोटि के वेद और आर्य समाज संबंधी ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं ।

साहित्यिक कार्य :-

प्रोफेसर उमाकान्त उपाध्याय की सभी पुस्तकें आर्य समाज कलकत्ता ने प्रकाशित की हैं, केवल एक पुस्तक Understanding Satyartha Prakash" का प्रकाशन ''Dayanand International Vedapith Delhi" ने किया है । प्रो० उमाकान्त उपाध्याय ने आर्य समाज कलकत्ता की शताब्दी के अवसर पर आर्य समाज कलकत्ता का वृहद् इतिहास लिखा था । वह आर्य समाज कलकत्ता के प्रथम शताब्दी का महत्वपूर्ण प्रकाशन था । आर्यजगत के विद्वानों ने इसे भारतवर्ष के पूर्वांचल में आर्य समाज का प्रामाणिक दस्तावेज स्वीकार किया है ।

प्रो० उमाकान्त उपाध्याय आर्य समाज कलकत्ता के आचार्य रहे हैं और जीवन में यद्यपि अर्थशास्त्र के प्रतिष्ठित प्राध्यापक थे किन्तु इन्होंने अपना जीवन महर्षि दयानन्द सरस्वती के मिशन आर्य समाज और वेद सेवा को समर्पित कर रखा था, इन्होंने प्रचुर मात्रा में वेद सम्बन्धी साहित्य विशेष रूप से वेद मंत्रों की सुललित सारगर्भित व्याख्या की है । प्रो० उपाध्याय की इन व्याख्याओं को देश के भीतर और बाहर सम्मान प्राप्त हुआ है । डा० भवानीलाल भारतीय जैसे मूर्धन्य साहित्यकार ने प्रो० उपाध्याय को इतिहास के वेद सेवक विद्वानों की श्रेणी में सम्मिलित किया है । प्रो० उमाकान्त उपाध्याय की साहित्यिक साधना को निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है—

वेद सम्बन्धी साहित्य :- उपाध्याय जी के वेद सम्बन्धी साहित्य में महत्वपूर्ण भाग वेद मंत्रों की सरल सुललित, हृदयग्राही व्याख्याओं का है । वेदों के सम्बन्ध में एक प्रकार का वह वैदुष्य पूर्ण साहित्य है जो विद्वानों के काम का है और एक प्रकार का वह साहित्य है जो वेदों की सरल सुललित व्याख्या

thearyasamaj.org

है । ऐसी व्याख्यायें स्वध्यायशील वेद भक्तों के लिए तो उपयोगी होती ही है, साथ ही जो वेद भक्त हैं उन साधारण व्यक्तियों के लिए भी ये व्याख्यायें उपयोगी होती हैं । आर्य समाज से बाहर के लोग भी वेद मंत्रों और उनकी विषय वस्तु से परिचित होते हैं इस प्रकार के साहित्य से वेदों का अच्छा प्रचार होता है ? उपाध्याय जी के वेद व्याख्या से सम्बन्धित निम्न पुस्तकें हैं :-

१) प्रार्थना प्रवचन
२) वेद - वैभव
३) वेद - वन्दन
४) शयन से पूर्व प्रार्थना
५) वेद– वीथिका
६) ऋ० भा० भू०-राजप्रजाधर्म प्रबोध भाष्य
७) वेद और स्वामी दयानन्द
८) वेदों में गोरक्षा या गोवध

प्रो० उपाध्याय की अन्य विषयों पर निम्नलिखित पुस्तकें हैं :-

९) आर्य समाज कलकत्ता का शतवर्षीय इतिहास
१०) आर्य समाज बड़ाबाजार का शतवर्षीय इतिहास
११) युग निर्माता सत्यार्थ प्रकाश सन्दर्भ दर्पण
१२) व्यतीत के यश की धरोहर (महासम्मेलनों के संस्मरण)
१३) Understading Satyarth Prakash
१४) बंगाल में शास्त्रार्थ
१५) आर्य समाज : परिचय और प्रासंगिकता
१६) आर्य समाज से परिचय
१७) काशी शास्त्रार्थ : एक समीक्षा
१८) धर्म सम्प्रदाय और सेक्यूलरिज़्म
१९) योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण
२०) श्रावणी उपाकर्म
२१) मूर्ति पूजा समीक्षा
२२) श्राद्ध तर्पण
२३) अर्थ शौच
२४) हंसामत की मिथ्या वाणी
२५) कम्युनिस्टों के मोर्चे पर स्वामी दयानन्द
२६) कर्मकाण्ड
२७) मातृभूमि-वैभवम्
२८) महर्षि वचन-सुधा

प्रो० उपाध्याय जी के इन पुस्तकों का आर्य जगत में पर्याप्त सम्मान हुआ है । आपको कई प्रतिष्ठित पुरस्कारों से पुरस्कृत किया गया था, आपको साहित्य कार्यों के लिए मेघजी भाई आर्य साहित्य पुरस्कार, (आर्य समाज शान्ताक्रुज मुम्बई) प्रदान किया गया था । आपके 'सत्यार्थ प्रकाश सन्दर्भ दर्पण' को घूड़मल प्रह्लाद कुमार (हिण्डोन सिटी, राजस्थान) पुरस्कार मिला है । Understanding Satyartha Prakash गंगाप्रसाद उपाध्याय पुरस्कार (प्रयाग) से पुरस्कृत किया गया था । प्रो० उमाकान्त उपाध्याय को ऋषि निर्वाण शताब्दी पर परोपकारिणी सभा ने **'साहित्यकार विद्वान्'** का सम्मान एवं प्रमाणपत्र दिया था ।

thearyasamaj.org

सन् २००७ ई० में आर्य समाज बड़ाबाजार की शताब्दी पर वेद पारायण यज्ञ का ब्रह्मत्व का भार अधिकारियों ने हर वर्ष की भाँति पं० उमाकान्त जी पर ही डाला । पैरों की असह्य तकलीफ पर अधिकारियों का स्नेह भारी रहा । इस शताब्दी के कुछ दिनों बाद ही आचार्य जी बिस्तर से नीचे गिरे और रीढ़ की हड्डी में चोट आ जाने से चलने-फिरने में असमर्थ हो गये । परन्तु आर्य समाज के प्रति समर्पण और ऋषि दयानन्द के प्रति अनन्य श्रद्धा ने उन्हें निराश या हताश नहीं होने दिया । ८० वर्ष की आयु में लगी इस गम्भीर चोट के बारे में भी वे मजाक करते कि ईश्वर ने मुझे आदेश दे दिया है कि इधर उधर भागना छोड़ सिर्फ वेद और संस्कृत की सेवा करो । इच्छाशक्ति और मानसिक दृढ़ता की पराकाष्ठा यह थी कि सात वर्षो से अधिक समय तक शय्या पर होने के बावजूद लगभग हर वर्ष उनकी कोई न कोई पुस्तक प्रकाशित होती रही । अन्त में **''महर्षि वचन सुधा''** नामक पुस्तक प्रेस में भेज चुके थे । अदभ्य इच्छाशक्ति होने पर भी सात वर्षो का शय्याशायी शरीर प्रकृति की अवहेलना न कर पाया । अन्ततः २ नवम्बर २०१४ ई० को प्रातः ५ बजे ईश्वर ने उन्हें अपने कृपा-अंक में बुला लिया। आचार्य जी अपने पीछे एक गौरवशाली एवम् आदर्श अनुकरणीय परम्परा छोड़ गये हैं । ईश्वर हमें शक्ति दे कि हम उनकि आदर्शो के अनुगामी बन सकें ।

(पृष्ठ १६ का शेषांश)

श्रद्धा को धारण करने से सभी गुण स्वतः आ जाते हैं और व्यक्ति सभी उपलब्धियों का पात्र बन जाता है । एक मन्त्र में इस बात को भली भाँति समझाया गया है । मन्त्र में निर्देश है कि अविद्वान् भी विद्वान् बन जाता है । मार्ग से अनभिज्ञ पुरूष मार्ग के ज्ञाता से पूछता है, वह ज्ञानी से ज्ञान प्राप्त कर पूर्ण ज्ञानी बन जाता है । वह शिक्षित होकर उत्तम मार्ग को प्राप्त कर लेता है । गुरू के अनुशासन का यही कल्याणदायक परिणाम है। अनुशासित व्यक्ति अविद्वान् होने पर भी ज्ञान को प्रकाशित करने वाला वाणियों की गति को पा जाता है, उस की वाणी भी ज्ञान को प्रकाशित करती है —

अक्षेत्रवित् क्षेत्रविदं हि अप्राट्
स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः ।
एतद् वै भद्रमनुशासनस्योत
स्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम् ।। (ऋ० १०.३२.७)

वेद का उपदेश युवा पीढ़ी के लिये विशेष रूप से अनुकरणीय है । वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में विपरीत परिणाम सामने आ रहे हैं और सारा वातावरण संघर्ष एवं उपद्रवों से दूषित हो गया है । यह सब मनमानी करने का परिणाम है । अतः शिक्षाविदों को शिक्षा के क्षेत्र में श्रद्धा तथा अनुशासन पर अधिक बल देना चाहिये । नयी-नयी विधियों को अपनाने और पुनः पुनः पाठ्यक्रम में परिवर्तन करने से पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त होगी । अनुशासनहीन नागरिकों को अनुशासित बनाने का यही उपाय है ।

आर्य समाज शामली
उत्तर प्रदेश-२४७७७६

thearyasamaj.org

दिसम्बर, 2014 RNI No. 5099/58 आर्य-संसार रजिस्टर्ड नं० KOL RMS-58/2013-15

।। ओ३म् ।।

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आर्य समाज कलकत्ता का १२९वाँ वार्षिकोत्सव

आर्य समाज कलकत्ता, १९ विधान सरणी कोलकाता-७०००० ६ का १२९वाँ वार्षिकोत्सव शनिवार २० दिसम्बर से रविवार २८ दिसम्बर २०१४ पर्यन्त हृषीकेश पार्क (निकट-सिटी कॉलेज) आम्हर्स्ट स्ट्रीट, कोलकाता-७००००९ में हर्षोल्लास पूर्वक मनाया जायेगा। जिसमें प्रतिदिन प्रात: अथर्ववेद पारायण यज्ञ, अपराह्न व सायंकाल विभिन्न सम्मेलन तथा सायंकालीन सत्र में आमन्त्रित वैदिक विद्वानों के विभिन्न विषयों पर सारगर्भित उपदेश व भजन होंगे।

आमन्त्रित विद्वत्गण

प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु (अबोहर), डॉ० धर्मवीर जी (अजमेर), डॉ० राजेन्द्र विद्यालंकार, श्री कुलदीप विद्यार्थी

मुख्य कार्यक्रम

प्रतिदिन प्रात:	७.३० बजे से ९.३० बजे तक	अथर्ववेद पारायण यज्ञ
प्रतिदिन प्रात:	९.३० बजे से १०.३० बजे तक	भजन व उपदेश
प्रतिदिन प्रात:	१०.३० बजे से १२.०० बजे तक	बंग-भाषा कार्यक्रम
प्रतिदिन सायं	४ बजे से ६ बजे तक	बंग-भाषा कार्यक्रम
प्रतिदिन सायं	६ बजे से ९.३० बजे तक	संध्या, भजन व व्याख्यान
२० दिसम्बर २०१४	अपराह्न २ बजे से ५ बजे तक	विशाल एवं सुसज्जित शोभायात्रा
२१ दिसम्बर २०१४	पूर्वाह्न १० बजे से १२ बजे तक अपराह्न ३ बजे से ५.३० बजे तक	सामूहिक सत्संग एवं उद्घाटन समारोह बालक सत्संग
२२ दिसम्बर २०१४	अपराह्न २ बजे से ५ बजे तक	आर्यकन्या महाविद्यालय का कार्यक्रम
२३ दिसम्बर २०१४	सायं ६ बजे से ९.३० बजे तक	स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस
२४ दिसम्बर २०१४	अपराह्न २ बजे से ५ बजे तक सायं ६ बजे से ९.३० बजे तक	महिला सम्मेलन राष्ट्र रक्षा सम्मेलन
२५ दिसम्बर २०१४	सायंकालीन अधिवेशन	भजन व व्याख्यान
२६ दिसम्बर २०१४	सायं ६ बजे से ९.३० बजे तक	वेद सम्मेलन
२७ दिसम्बर २०१४	सायंकालीन अधिवेशन	भजन व व्याख्यान
२८ दिसम्बर २०१४	अथर्ववेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति, सामूहिक सत्संग, ऋषि लंगर वशंका समाधान।	

द्रष्यव्ट : कार्यक्रम में परिवर्तन का अधिकार सुरक्षित है।

अथर्ववेद पारायण यज्ञ में यजमान बनने के लिए कृपया आर्यसमाज के कार्यालय से सम्पर्क करें।

मनीराम आर्य

सत्य प्रकाश जायसवाल

आर्य समाज कलकत्ता, १९ विधान सरणी कोलकाता - ६ के लिए श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल, द्वारा प्रकाशित तथा एशोशियेटेड आर्ट प्रिण्टर्स, ७/२, विडन रो, कोलकाता-६ में मुद्रित। मो. : ९८३०३७०४६३